"हंसराज 'रहबर' एक जमाने से हिंदी में कहानियाँ लिख रहे हैं। उनकी भाषा मंजी हुई है, कहानी कहने की उनकी क्षमता अचूक है। उन में बड़ी शक्ति और ओज है।"

श्री पतराय

कहानी विशेषांक जनवरी १९५६

"हंसराज रहबर अपनी कहानियों में यथार्थवाद की परम्परा के कायल हैं। लेकिन उनका यथार्थवाद सिर्फ आलोचनात्मक नहीं, बल्कि रचनात्मक भी है। उन्हें सामाजिक शक्तियों के संघर्ष और उनके विकास का पूर्ण ज्ञान है और वे अपने इस ज्ञान को बड़े सलीके से इस्तेमाल करते हैं। उनकी विशेषता यह है कि वे कहानी को कहानी के तौर पर बरतते हैं। वे बड़ी से बड़ी घटना को भी पात्रों की रचना द्वारा प्रस्तुत करते हैं और जीवन की बुनियादी समस्याओं को भी पात्र ही उभारते हैं। उनकी भाषा सरल, सुबोध और जनता की बोलचाल से निकट होती है।"

मुमताज़ हुसैन

उर्दू के प्रसिद्ध आलोचक

हम लोग

हंसराज 'रहबर'

रजनी साहित्य सदन
देहली

प्रमुख वितरक:
नवयुग प्रकाशन
देहली

मूल्य सवा तीन रुपए

रजनी साहित्य सदन
२६६, चावड़ी बाज़ार दिल्ली, द्वारा प्रकाशित तथा
ज्ञानप्रकाश गुप्ता द्वारा कम्पोज होकर सचदेवा प्रेस में मुद्रित ।

परम मित्र त्रिलोचन शास्त्री को

बनारस के सहवास की स्मृतियों में

'रहबर'

अपनी बात

मेरी कहानियों का यह तीसरा संग्रह है। इससे पहले 'उपहास' और 'नवक्षितिज' दो संग्रह सन् १९४७ में प्रकाशित हुए थे जिनमें सन् १९४६ तक की कहानियाँ शामिल थीं। उसके बाद देश का विभाजन हुआ और बंधा-टिका जीवन साहसा अस्त-व्यस्त हो गया। मुझे लाहौर छोड़ कर दिल्ली आना पड़ा और इतना अर्सा नया कहानी संग्रह छपवाने की व्यवस्था न हो सकी।

बीच में कहानी लिखना लगभग छूट ही गया था। साल में मुश्किल से दो-तीन कहानियाँ लिख पाता था। फिर भी जब कहानी संग्रह छपवाने की बात उठी तो देखा कि आठ-नौ साल की सभी कहानियों को एक ही संग्रह में दे देना सम्भव नहीं है क्योंकि इससे पुस्तक का आकार और मूल्य अधिक बढ़ जाएगा। हमारे पाठक जो सस्ती कहानी-पत्रिकाओं में सस्ती कहानियाँ पढ़ना पसन्द करते हैं; शायद वे अधिक मूल्य खर्च करना पसन्द न करें।

अब प्रश्न यह उठा कि चुनी हुई कहानियाँ दी जावें। सोचा तो यह भी सम्भव नहीं जान पड़ा क्योंकि लेखक के लिए अपनी ही रचनाओं में से अच्छी बुरी चुन लेना बहुत ही कठिन है। कई बार ऐसा होता है कि वह अपनी जिस कहानी को बहुत अच्छा नहीं समझता; आलोचक और पाठक पसंद करते हैं और जिस कहानी को वह अच्छा समझता है; आलोचक और पाठक को कुछ अधिक पसन्द नहीं आतीं। इस बारे में दूसरी कठनाई यह है कि लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसके युग में जो सामाजिक और राजनीतिक घटनायें घटित होती हैं और आस-पास के लोगों पर उनकी जो प्रतिक्रिया होती

है, लेखक उन्हें अपनी रचनाओं में कलात्मक ढंग से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है । फिर इन घटनाओं की प्रतिक्रिया लेखक के अपने मन पर भी होती है, जिससे जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण परिवर्तित और विकसित होता रहता है और अपने इस दृष्टि कोण को वह अपनी रचनाओं में व्यक्त करता है । इसलिए मैंने महसूस किया कि कहानियाँ चुन लेने से घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम, जन साधारण पर उनकी प्रतिक्रिया और लेखक के बौद्धिक विकास का बोध पाठक को नहीं हो पाएगी । इसलिए चुनने का काम भी नहीं हो सका । कह नहीं सकता कि पाठक को यह कहानियाँ कैसी जचेंगी; पर उनमें एक रचना-क्रम आवश्यक है ।

अन्त में मुझे संग्रह के नाम के बारे में यह कहना है कि उर्दू में 'क्रूरता के बीज' कहानी का नाम 'हम लोग' है और उर्दू के जिस संग्रह में यह कहानी शामिल है, उसका नाम इसी कहानी के नाम पर "हम लोग" रखा था । प्रस्तुत संग्रह का नाम भी जब 'हम लोग' तजवीज़ हुआ तो चाहा कि 'क्रूरता के बीज' कहानी का नाम भी बदल दिया जाए । लेकिन फिर सोचा कि आखिर दूसरी कहानियाँ भी तो हम लोगों ही के बारे में हैं । अतः इस नाम में इतनी व्यापकता है कि वह सभी कहानियों को अपनी परिधि में ले सके ।

'हंसराज' 'रहबर'

अकल मंजिल
उर्दू बाजार, दिल्ली
२३ . ६ . ५५ .

विषय सूची

वातावरण

तुम्हारा वह पत्र मिला, जिसमें तुमने चार शब्दों का एक वाक्य लिखा है—

"आनन्द, क्या तुम जिन्दा हो ?"

हाँ, मैं जिन्दा हूँ, और अपने वातावरण से अधिक जिन्दा हूँ। शायद यही कारण है कि मैं तुम्हें चिरकाल से कोई पत्र नहीं लिख सका। वरना, तुम जानते हो कि पत्र लिखने में मैं कभी आलस नहीं करता। प्रत्येक पत्र का उत्तर देना मैंने अपना स्वभाव सा बना लिया है। फिर तुमसे पत्र व्यवहार करना तो खुशी की बात है। तुम्हारा पत्र पाकर तो मैं खिल उठता हूँ और तुम्हें पत्र लिख कर एक प्रकार का सुख अनुभव करता हूँ। शायद इसलिए कि मैं अपने सम्बन्ध में तुम्हें सब कुछ यों लिख देता हूँ जैसे अपने मन की बात अपने आप से कह रहा हूँ। मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता। यह सोचना ही नहीं पड़ता कि ये बातें पढ़ कर तुम मेरी बावत क्या खयाल करोगे ?

तुम्हें महज़ ख़ैर खैरियत तो लिखनी नहीं होती, वह सब कुछ लिखना होता है जो पत्र लिखते समय मैं अनुभव कर रहा होता हूँ। और इन दिनों मैं जो कुछ अनुभव कर रहा हूँ वह इतना अधिक है कि एक नहीं दस पत्र लिखे जा सकते हैं। कई बार लिखने का इरादा भी किया है लेकिन हर बार असफल रहा हूँ। कुछ पंक्तियाँ लिखने के बाद उकता कर उठ बैठा हूँ। जो कुछ मुझे कहना होता है, कह नहीं पाता। प्रत्येक शब्द बेगाना और अजनबी मालूम पड़ता है। मैं वही हूँ, लिखने का ढंग वही है; पर शब्दों की

बनावट ऐसी भद्दी और क्रूर दीख पड़ती है जैसे मेरे विचारों ने मेरे विरुद्ध कोई षड़यन्त्र रच रखा हो, वे इन शब्दों में बैठे मेरा हमुँ चिढ़ा रहे हैं ।

लिखना तो दरकिनार इन दिनों तो पढ़ना भी कठिन है । मार्क्स-वाद लेनिनवाद की पुस्तकें बन्द करके अलमारी में रख दी हैं, फलसफा ज़ेहन स्वीकार नहीं करता, कविता से ही मन बहलाऊं । लेकिन तुम्हें यह सुन कर आश्चर्य होगा कि ग़ालिब का दीवान सामने खुला पड़ा रहता है और मैं आँखें फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देखता रहता हूँ । जैसे उसकी समस्त कविता बेमानी हो, उसमें कोई रस, कोई आनन्द न हो । बस बैठे रहने, चुपचाप और बेकार बैठे रहने को जी चाहता है । अपने आपसे और वातावरण से विरक्त होकर जैसे एक अस्थूल शरीर शून्य में लटक रहा हो ।

अब तुम्हीं बताओ कि जो आदमी शून्य में लटकता रहता हो वह खत क्या लिखेगा ? यों मेरा शरीर भौतिक है। जिस कुर्सी पर मैं बैठा हूँ उसके बाज़ू उतने ही ठोस हैं जितनी काठ की बनी हुई कोई वस्तु हो सकती है । सामने मेज है; मेज पर जो चीजें पड़ी हैं, वे भी भौतिक और ठोस हैं । कमरा है , कमरे की दीवारें हैं । गली है , गली के लोग हैं । और इन सबके सम्बन्ध में मेरे मन में बहुत से विचार उत्पन्न होते हैं । बस इन विचारों के बारे में सोचता रहता हूँ और इस सोच में इतना खो जाता हूँ जैसे शून्य में तैर रहा हूँ । यह मेरी मानसिक दशा है । अब यह तुम जानो कि मैं मुर्दा हूँ कि जिन्दा । अलबत्ता मैं समझता हूँ कि जो आदमी सोच सकता है वह कुछ न करते हुए भी जीवित है । जाने वह कब कर्त्तव्यशील हो उठेगा ?

मुझे तुम्हारे उस पत्र के शब्द भी याद आ रहे हैं जो तुमने मेरे बनारस से लौटने के बाद लिखा था—

"जब तुम वातावरण को अनुकूल नहीं पाते तो तुम्हारी विद्रोह

आत्मा चीख उठती है। वह तुम्हें कहीं भी चैन से नहीं बैठने देती और तुम भाग खड़े होते हो ।"

लेकिन दोस्त, आदमी भाग कर जाएगा कहाँ ? हर जगह वही वातावरण है, वही लोग हैं, वही हिन्दुस्तान है । मैं भागते २ थक गया हूँ । अब यही सोचा है कि इस वातावरण को समझूँ, इसके सुख, दुःख, नफरत और मोहब्बत को समझूँ; शायद जीने की कोई बेहतर सूरत निकल आए ।

अब तक मैंने थोड़ा बहुत समझने की कोशिश की है तो यह महसूस किया है कि इनकी नफ़रत और मौहब्बत मेरी नफ़रत और मौहब्बत से मिलती जुलती है और इनकी रूहें भी मेरी रूह की तरह बाग़ी हैं । हम सब इस वातावरण से होकर इधर उधर भागते फिर रहे हैं और तीव्र गति से किसी एक ही मन्जिल की ओर बढ़ रहे हैं । यह विचार हैं जो इस समय मेरे मस्तिष्क में उठ रहे हैं और अविरल उठते रहेंगे । और इनकी पृष्ठ-भूमि वह वातावरण है जिसमें मैं अब रहता हूँ और वे लोग जो इस वातावरण को बनाने वाले हैं । तुम अवश्य इस वातावरण और इन लोगों की एक झलक देखना पसंद करोगे । इसके बिना मेरे इन विचारों और मेरी मानसिक वृत्ति को तुम न समझ सकोगे ।

सुबह सवेरे—बहुत सवेरे मेरी आँख अचानक खुल जाती है, क्यों कि हा हू, हा हू के कलरव से समस्त वातावरण जाग उठा हो तो आदमी चाहे कितना ही नींद का माता क्यों न हो उसके लिए सोते रहना संभव नहीं । सुबह जब तबियत खामोशी चाहती है मैं तेज तेज चीखें सुनने पर मजबूर हो जाता हूँ ।

गली के दूसरी ओर सामने जो घर है, उसमें दो लड़के रहते हैं । इन की आयु दस और ग्यारह साल के दरम्यान की है । शरीर क्षीण, रंग गन्दमी और कपड़े मैले हैं । बहुधा नंगे ही रहते हैं । वे बहुत सवेरे उठकर कबूतर उड़ाते हैं । उन्हें आकाश में उड़ते और कलाबा-

जियां लगाते देख कर खुश होते हैं । उछल-उछल कर चीखते हैं और ताली पीटते हैं जैसे उनकी चीखें आस्मान तक पहुंच जायेंगी— कबूतरों तक उनका हर्ष–संदेश ले जायेंगी, और उन्हें ऊंचा उड़ाने में सहायता करेंगी ।

जब कोई कबूतर उन की छत से उड़कर ऊपर उड़ने की बजाय किसी दूसरे के मकान पर जा बैठता है तो वे दोनों लड़के एक ही स्वर में "हा हू हा हू" चिल्लाना आरम्भ कर देते हैं, तालियाँ पीटते हैं, अगर कबूतर फिर भी नहीं उड़ता है तो कंकर फेंकते हैं । इस कंकर फेंकने पर कई वार झगड़ा भी उठ चुका है ।

कल ही वह मोची इनके घर में घुस आया था और गरज कर कहा था—"बदमाश सूअर ! सारा मुहल्ला सिर पर उठाये रखते हैं । अब कंकर फेंका तो खाल उधेड़ दूंगा ।"

बाप ने बेटों को खूब मारा । लेकिन वे दूसरे दिन फिर कबूतर उड़ा रहे थे । यह मार तो मोची का क्रोध दूर करने के लिए पड़ी थी; लेकिन बाप को जब खुद क्रोध आता है तो वह इन्हें इतना मारता है कि दीवारें तक कांप जातीं हैं । माँ का भी यह साहस नहीं पड़ता कि बीच में पड़कर बीच-बचाव करें । शायद वह बीच-बचाव करना ही नहीं चाहती है, चुपचाप अपने काम में लगी रहती है जैसे वह, यह क्रूर दृश्य देखने की अभ्यस्त हो चुकी हो । जब उसे स्वयं मार पड़ती है तो कौन बीच-बचाव करने आता है । मार खाते खाते उसकी पस-लियां पक चुकी हैं । और जब माँ को गुस्सा आता है तो वह गोद के बच्चे पर बरस पड़ती है । उसे मार मार कर अधमरा कर देती है । ये दोनों लड़के आपस में लड़ने लगते है तो लड़ते ही रहते हैं । बाप घर में उपस्थित न हो तो कयामत बरपा करके छोड़ते हैं । माँ बेचारी मुँह ताकती रह जाती है । उसे गिला है कि मरे जवान होने से पहले ही हाथ से निकल गए हैं ।

इस घर में क्रोध किसी से भी संभाले नहीं संभलता, जैसे सब क्रोध

करने को एकत्रित हुए हैं और क्रोध करके ही जी रहे हैं ।

बाप, गली के बाहर पानी की सबील के निकट जो टाल है वहाँ लकड़ियाँ फाड़ता है और उन्हें उठा कर गाहकों के घर में छोड़ आता है । लड़के कोयले की दुकान पर काम करते हैं सिर्फ घर है। जहाँ उन्हें बराबरी का दर्जा प्राप्त है । घर है, जहाँ वे अपने दिल की घुटी घुटी हसरतों को व्यक्त कर सकते हैं । यहीं हसरतें जो चीखों का रूप धारण करती हैं, तो आकाश में उड़ना चाहती हैं ।

शुरू- शुरू में मैं भी इन लड़कों पर नाराज होता था और उन्हें चीखने से मना करता था । लेकिन अब जब यहां रहते काफी समय हो गया है तो मना करने को जी नहीं चाहता । चुपचाप चारपाई पर पड़े उन्हे चीखते सुनता रहता हूं । इन चीखों का तात्पर्य आत्मा में भर लेना चाहता हूँ । जाने क्यों अब यह चीखें बुरी लगने की जगह प्यारी लगती हैं । कई बार मन में आता है कि मैं भी इन के साथ मिल कर कबूतर उड़ाऊं और गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाऊं—हा हू ! हा हू !

जब यह लड़के कबूतर दरबों में बन्द करके काम पर चले जाते हैं तो भी शोर बन्द नहीं होता । गली में कोई न कोई हंगामा बरपा रहता है । सामने के मोड़ पर म्युनिस्पिल कमेटी का नल है जो चौबीस घंटे चलता रहता है और उस पर हर समय पानी भरने वालों की भीड़ लगी रहती है बाल्टी से बाल्टी और बर्तन से बर्तन खनकता है । पानी भरने वालों की आपस में तकरार रहती है । पहले पीछे आये हुओं में झगड़ा रहता है । कोई नहाता है तो कोई कपड़े धोता है ।

नल के समीप एक छोटे से कमरे में जमादारनी रहती है । नाम तो उसका पारवती है, पर सब लोग उसे जमादारनी कहते हैं क्योंकि उसका घर वाला जमादार है । म्युनिस्पिल कमेटी में मुलाजिम है । नीला साफा, नीला कुरता और नीला ही पायजामा पहनता है ।

जमादारनी का यह दूसरा पति है । बेचारे को पिछली उम्र में औरत जुड़ी थी । उम्र दोनों की एक ही होगी, लेकिन जमादारनी बढ़ी हट्टी-कट्टी है । वह उसके मुकाबले में बिल्कुल दुबला पतला और मरियल दीख पड़ता है । मैंने कभी उसे बात करते नहीं देखा । जैसे मुँह में जबान ही न हो । कमरे के एक कोने में बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ाया करता है । इसके विपरीत जमादारनी हर वक्त गरजती रहती है । अगर उसे नल से पानी लेना हो तो सब से पहले भरने की कोशिश करती है —

"मैं साहब से शिकायत करुंगी और नल बन्द करवादूंगी ।"

लोग नल बन्द कराने की धमकी से नही डरते; मगर उसकी जबान से डरते हैं । वैसे नल बन्द कराना वह खुद भी नहीं चाहती उसे महज यह जताना होता है कि नल म्युनिसिपल कमेटी का है और मेरा जमादार म्युनिसिपल कमेटी का मुलाजिम है, इस लिए नल पर सबसे ज्यादा अधिकार मेरा है ।

इस पति से जमादारनी की एक लड़की लल्ली है जिसकी आयु अब सोलह सत्रह साल की है । रंग काला है, पर नयन देखते बनते हैं । जमादारनी किले में सफाई के लिए जाती तो लल्ली को भी अपने साथ ले जाती है । उसकी बड़ी लड़की जुमिया भी—जो पहले पति से है; इसी गली में रहती है । उसका घरवाला काम पर जाता है, और वह चारपाई बिछाए गली में बैठी रहती है । रंग गोरा शरीर भरा हुआ और सुडौल है । मेरे एक मित्र ने उसे देख कर कहा था—"अगर पहन ओढ़ कर रहे तो बेगम नजर आए ।"

माँ-बेटी—जमादारनी और जुमियां में अक्सर लड़ाई रहती है । जुमियां नल पर आई नहीं, कि लड़ाई आरम्भ हुई नहीं । और एक बार आरम्भ होकर जल्द बन्द होने में नहीं आती । दोनों एक दूसरी को कोसती हैं । बहुत ही भद्दी और अश्लील गालियां देती हैं, और इन गालियों को अधिक कटु और तीव्र बनाने के लिए गले की तमाम

शक्ति खर्च कर देती हैं। दोनों के चेहरे क्रोध से तमतमाने लगते हैं। हमुँ से झाग निकलने लगते हैं। जुमियां जब माँ की कर्कशता सहन नहीं कर सकती तो उसे सख्त से सख्त गालियाँ देने लगती है। लल्ली की ओर इशारा करके कहती है—

"बेटी की कमाई खाने वाली क्या बोलने को मरती है? चुल्लू भर पानी में डूब मर।"

जमादारनी झुँझला उठती है और नौबत हाथापाई तक पहुँच जाती है। दोनों गुत्थम-गुत्था हो जाती हैं। लल्ली खड़ी गहरी स्याह आंखों से देखती रहती है—देखती रहती है। उसने माँ या बहिन के पक्ष में कभी भी एक वाक्य नहीं कहा। हाँ, अगर जमादार घर पर होता है तो हुक्का छोड़ कर बाहर आ जाता है। उन्हें अलग-अलग करने की बड़ी कोशिश करता है पर उसकी पेश नहीं चलती है।

जुमियां को मैंने गली के और किसी आदमी से लड़ते हुए नहीं देखा। चुपचाप घर में बैठी रहती है। अगर किसी को कोई बात दरियाफ्त करना हो, तो बड़ी नम्रता से उत्तर देती है। पड़ौस में जो खातून रहती है उसके साथ उसकी गहरी छनती है। वह अपने मन का भेद भी उससे कहते नहीं झिझकती। एक दिन वह माँ से लड़ झगड़ कर आई थी तो खातून से कह रही थी—जब मैं छोटी थी तो यह चुड़ैल मुझे इतना मारती थी—इतना मारती थी कि मेरी रग-रग दुखने लगती थी और रोते रोते घिग्घी बन जाती थी। जब मैं लल्ली की उम्र की थी तो मेरी हर बात पर शक करती थी और मुझे घर से बाहर नहीं निकलने देती थी। अगर कहीं उसके साथ भी जाना होता तो रास्ता चलना भी मुश्किल कर देती। खामखाह कहती कि मैं इधर उधर क्यों देखती हूँ?

पर अब जुमियां स्वच्छन्द है। उसका अपना घर है, पति है, बच्चा है। वह माँ की एक नहीं मानती। बल्कि मौक़ा बेमौक़ा उसे

चिढ़ाने की कोशिश करती है जैसे वह उससे लड़ना चाहती हो। जब वह लड़ कर लौटती है तो उसके चेहरे पर संतोष की असाधारण झलक होती है जैसे उसकी आत्मा का कोई घाव भर रहा हो।

खातून एक दुबली पतली औरत है। बात संक्षिप्त और सुलझी हुई करती हैं। सीना पिरोना करके अपना और अपनी लड़की का पेट पालती है। हाँ, उसी की तरह दुबली पतली उसकी एक लड़की है। आयु बारह-तेरह साल की है। वह मोहल्ले के बच्चों से मिल कर खेला करती हैं। खातून के आगे पीछे और कोई नहीं। बस बेटी ही है, और वह उसे अपनी रूह की तरह प्यार करती है। उसे खेलते कूदते देख कर खुश होती है; लेकिन गली के इधर उधर मौहल्ले में पुराने ढंग के रूढ़िवादी लोग बसते हैं। उन्हें इतनी बड़ी लड़की का खेलना कूदना बुरा लगता है। चार पाँच दिन हुए मैं घर से लौट रहा था। देखा कि खातून के घर के सामने भीड़ लगी हुई है और गरमा-गरम गुफ्तगू हो रही है। गुफ्तगू का विषय खातून की बेटी थी! खातून बैठी सुनती रही और सुन कर बोली—

"आप बताएँ इस बेचारी को सारा दिन कैसे इस अन्धेरी कोठरी में बन्द रखूँ ?"

उसका घर तंग अन्धेरी कोठरी ही तो है लेकिन मौहल्ले वालों को उसकी यह दलील कुछ जंची नहीं। उनके मुख्य वक्ता ने कहा—

"हमारा क्या है ? हम तुम्हारे भले की कहते है, इस तरह फिरेगी तो जवान लड़की चौपट हो जाएगी।"

खातून और जुमियां के घर के सामने बनिए की दुकान है। दुकान का चबूतरा गली से काफी ऊंचा है। बनिया इस चबूतरे पर चौकड़ी मारे यों बैठा रहता है जैसे झील के किनारे बगला। ग्राहक के अतिरिक्त वह किसी से बात नहीं करता। चाय की पुड़िया जो सौ डेढ़ सौ कदम चल कर चार आने में मिलती है वह साढ़े चार आने की देता है। कोई एतराज करता है तो उन्हें वह जवाब देता है—

"उनके पास थोक ऐजन्सी है । उन्हें माल सस्ता मिलता है । इस प्रकार वह हर चीज बाजार से मँहगी देता है और अक्सर वह चीज मँहगी ही नहीं घटिया और खराब भी होती है । लेकिन उसे गली वालों से गिला है कि वे चीज खरीदने बाजार क्यों जाते हैं ? बिक्री अधिक हो तो वह भी अच्छी और सस्ती चीजें लाकर दे सकता है ।

मैंने उसे सिर्फ एक बार चबूतरे के नीचे गली में खड़े देखा है । वह एक लड़के पर इसलिए खफा हो रहा था कि उसने उसकी धोती क्यों छूदी ? उसकी आंखें छोटी छोटी और सिर घुटा हुआ है । जब मैं उसे देखता हूँ तो कराहट सी महसूस होती है । शायद इस-लिए कि वह चीखता चिल्लाता क्यों नहीं ? जैसे वह इस वातावरण का अंग न हो; इस गली का ही व्यक्ति न हो ।

बनिए की दुकान की बगल में एक बुढ़िया की दुकान है । वह बहूजी कहलाती है । उसके सम्बन्ध में शायद एक यही बात दिल-चस्प है । वह दो तीन मकानों की मालिक है । अकेली जान है । उनका किराया खाती है । दुकान महज़ शगल के तौर पर खोल रखी है । गली में उसका चर्चा इतना भी नहीं होता जितना मैंने उसके बारे में लिख दिया ।

इससे आगे हमारी जमादारनी का मकान है । हमारी जमा-दारनी इसलिए कि वह हमारे यहां सफाई के लिए आती है । वह इस गली का दिलचस्प और महत्वपूर्ण व्यक्ति है । हाथी की तरह झूम कर चलती है । जब बोलती है तो उसके लहजे में एक गरिम होती है; जैसे सारे मौहल्ले पर शासन कर रही हो । हम कहते कहते थक गए कि सफाई जरा जल्द कर जाया करो; लेकिन वह बारह एक बजे से पहले कभी नहीं आती । उसे इस बात का जरा भी भय नहीं कि उसे काम पर से हटा दिया जाएगा, क्योंकि वह जानती है कि कोई दूसरी भँगिन उसकी जगह उसका काम करने को तैयार

नहीं होगी । अगर हो तो वह उसे नाखून से फाड़ खाए । हमने उसका नाम चाची ताड़का रख छोड़ा है ।

गत होली के दिन चाची ताड़का ने जी भर कर शराब पी । घूँट-घूँट बच्चों को भी पिलाई और उन्हें साथ लेकर रात भर नाचती रही । जो जी में आया बकती झकती रही; किसी की हिम्मत न थी कि उसे मना कर देता ।

चाची ताड़का तीन बच्चों की माँ है । सबसे बड़ा लड़का है, उसकी उम्र सात आठ साल है । जब वह शरारत करता है तो चाची ताड़का लाल आँखें निकाल कर कहती है हराम के तुखम निचला नहीं बैठता । उन घुड़कियों के बावजूद वह निचला बैठने का आदी नहीं । जब चाची ताड़का घर पर न हो तो छोटी बहिन का सिर बाहों में लेकर भींच डालता है और उसे बिल्लाते देख कर प्रसन्न होता है । इस लड़की की उम्र चार एक साल है । डेढ़ दो साल की एक छोटी बच्ची ताड़का की गोद में है । जब चाची ताड़का उसे अपने पेट पर लिटाए गली में लेटी होती है तो ऐसा लगता है जैसे भैंस के शरीर पर मेढक बैठा है ।

एक और लड़की बत्तो है, जिसका दस बारह रोज में ब्याह होने वाला है । वह चाची ताड़का की लड़की नहीं उसके पति की लड़की है । पहली पत्नि से उत्पन्न भी नहीं थी । पति बेचारे का इतना महत्व भी नहीं जितना घर में बैठ कर हुक्का पीने वाले जमादार का, शायद इसलिए की वह म्युनिसिपल कमेटी का मुलाजिम नहीं । चाची ताड़का ने उसकी किसी बात पर कभी गौर नहीं किया । शायद इसलिए कि चाची ताड़का का व्यक्तित्व जमादारनी से अधिक विशाल है, और वह इसके पीछे सर्वथा छिपा रहता है ।

लेकिन बत्तो एक उभरते हुए व्यक्तित्व की मालिक है । वह चाची ताड़का के पीछे छिपना पसन्द नहीं करती । वह अकसर हमारे यहां सफाई करने आया करती है । मैंने एक बार कहा था कि जमा-

दारनी तो नहीं मानती, खुदा के वास्ते तुम ही जरा जल्द आ जाया करो, हमें सख्त तकलीफ होती है । बत्तो ने जले जी से कहा था—

"मेरे क्या बस की बात है ? मैं तो गोली हूँ उसकी ।"

और फिर उसने जिन आंखों से मेरी ओर देखा था उनमें एक दुखद भरी कहानी भरी हुई थी । बत्तो का चेहरा दुबला पतला और तनिक तिरछा है । लेकिन आंखें बड़ी बड़ी हैं । उनमें कोई अद-भुत जादू है जो इन आंखों को ही नहीं बल्कि बत्तो को भी सुन्दर बना देता है । जो चाहता है कि आदमी उन्हें देखता ही रह जाए । उनमें डूब कर उनमें छिपी कहानी का रहस्य मालूम करले ।

डेढ़ दो महिने पहले बत्तो के साथ एक लड़का इन्द्र आया करता था । वे दोनों मिल कर घरों में सफाई करने जाया करते थे । उस समय हमारी इस बिल्डिंग में आबादी इतनी गुंजान नहीं थी । औरत कोई नहीं थी । सब मर्द थे । वे काम से चले जाते थे । मैं अपने कमरे में बैठा लिखा पढ़ा करता था । मेरे अलावा रसोईया होता था । वे दोनों खूब चुहलबाजी करते थे । हमारी खुली छत पर उछलते कूदते रहते थ । कभी बत्तो आगे होती थी इन्द्र उसे पकड़ने की कोशिश करता था और कभी इन्द्र आगे भागता था और बत्तो उसे मारने दौड़ती थी । रसोइया खड़ा हंसा करता था और मैं चुप बैठा देखा करता था ।

चाची ताड़का को सन्देह है कि बत्तो सारे मुहल्ला से इश्क लड़ाती है । वह उस पर कड़ी निगाह रखती है और उसे घूरती है । जब बत्तो कुछ चिढ़कर उसकी ओर देखती है तो वह जल भुनकर कटु स्वर में कहती है —

"क्या घूरती है, आंखें निकाल लूंगी अपनी सौत की ।"

और आँखें निकालने का यह वाक्य मैंने चाची ताड़का से कई बार सुना है । एक दिन तो उसने सचमुच आंखें निकालने की कोशिश की थी । बत्तो को खूब मारा था । वह सारा दिन हमारी दीवार के नीचे

चबूतरे पर बैठी रोती रही थी और चाची ताड़का के लाख नाराज होने के बावजूद काम पर नहीं गई थी । मैं जितनी मर्तबा नीचे उतरा उतनी मर्तबा बत्तो को वहीं बैठे रोते देखा । उसकी आँखें अब पहले से अधिक सुन्दर थीं और उनकी कहानी भी पहले से अधिक दुखमय थी । मुझे उससे सहानुभूति उत्पन्न हुई और मैंने चाची ताड़का से कहा:—

"जमादारनी क्यों मारती हो बेचारी को ? सुबह से बैठी रो रही है ।"

उसने जबाब दिया ।

"क्या करूँ बाबू जी अपनी धी बेटी के चलन का ध्यान तो रखना ही पड़ता है ।"

हम जिस बिल्डिंग में रहते हैं वह इस मुहल्ले में सब से ऊंची और शानदार है । इसलिए मुहल्ले के लोग इस इमारत में बसने वालों को ऊँचे और सभ्य समझते हैं । आओ तुम्हें जरा इनकी बात बताऊं । मुझे तुम जानते ही हो । हर सभा सोसायटी में अपने विरोधियों से लड़ना मेरा काम है । लेकिन यहां मैं किसी से भी नहीं लड़ता, क्योंकि यहाँ मुझे अपना कोई भी विरोधी नजर नहीं आता ।

मेरे बाईं ओर एक औरत और उसकी सास रहती है । वह देखने में अत्यन्त नीरस मालूम होती है , जैसे उसमें जिन्दगी के सब सोते सूख गये हैं । मैंने उसे कभी पति देवर और सास से हंस कर बात करते नहीं देखा । बल्कि उनके सामने वह ऐसी रहती है कि जैसे पगली हो । हाँ, वह पड़ोसन के बच्चे को अकसर खिलाया करती है । उसे प्रसन्न करने के लिए मुँह ढांप लेती है; फिर पल्लू करके कहती है और मुस्करा देती है । उसके होंठ ढीले ढाले और नीचे को लटके हुए हैं । इस लिये मुस्कराहट भी उन्हें आकर्षक नहीं बना सकती । मगर यह मुस्कराहट किसी असंतुष्ट और अमर भावना का प्रतिपादक मालूम होती है ।

उम्र चालीस साल से अधिक होने को आई! पर उसके अपना

कोई बच्चा नहीं, शायद इसीलिए वह सास को अच्छी नहीं लगती ।

नित्य के झगड़े ने उसका जीना दूभर कर कर दिया है । उसने इस लड़ाई से तंग आकर कुछ दिनों से अपना खाना पकाना अलग कर लिया है ।

दायीं ओर सामने जो कमरा है उसमें एक बूढ़ा और उसका परिवार रहता है । दर असल परिवार को बूढ़े का परिवार कहना दुरुस्त नहीं बल्कि वह खुद इस परिवार का एक बेकार सदस्य है । दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं और उनकी एक माँ है। बड़ा लड़क एक फर्म में अकाउंटेंट है । सवा सौ रुपये मासिक वेतन मिलता है जिस से इतने बड़े परिवार का खर्च चलना मुमकिन नहीं । इसलिए माँ को भी चिन्ता रहती है कि उन्हें बर्तन माँजने, कपड़े धोने अथवा इसी प्रकार का कोई दूसरा काम मिल जाय जिस से तीस रुपया महीना बन जाया करे और घर का खर्च अच्छी तरह चलने लगे। जब वह गांव में थी, तो उसे काम अक्सर मिल जाता था ।

/ मैं एक बात कहना भूल गया । इस इमारत में जितने भी लोग रहते हैं वह सब दंगों के भगाए हुए हैं । यह इमारत किसी मुसलमान व्यापारी की है जो काफी धनी था । और जो यह खातून नीचे रहती है, उसके यहाँ काम करती थी । वह खुद पाकिस्तान चला गया और खातून को दस पन्द्रह रुपये मासिक वजीफा भेजता है ।

यह परिवार सीमाप्रान्त से आया हुआ है। वहाँ घर का खर्च बुढ़िया को खुद चलाना पड़ता था क्योंकि यहां उसका बड़ा लड़का एक राजनैतिक दल का सरगर्म कार्यकर्ता था । बह सारा समय उसी के अर्पण करता था और अक्सर घर नहीं आता था । पर अब घर की हालत देख किसी नेता की सिफारिश से मुलाजिम हुआ था । बूढ़े ने सारी उम्र कोई भी काम नहीं किया वह वहाँ पर भी बेकार रहता था, यहाँ भी बेकार है । दिन रात स्ट्रैचर-नुमा चारपाई पर पड़ा खांसा करता है । मुझे यह खांसी भयानक और खौफनाक मालूम

होती है; जैसे उसके पीछे एक असीम खोखलापन है–एक थकी हुई आत्मा का खोखलापन ।

घर वालों ने सोचा वह बाजार में बैठ कर सब्जी बेच आया करे, अधिक नहीं दो चार आने तो रोज लाएगा । बेकार बैठने से तो अच्छा है । पहले दिन जो भिंडियां लाकर दी थीं वे घर में ही पड़ी सड़ गयीं । बुढ़ा पांच मिनट बाजार में बैठ कर उठ आया और कह दिया मुझसे नहीं बिकतीं । जब वह स्वयं काम करना नहीं चाहता तो किसी का कहना सुनना व्यर्थ है । घर वाले कुढ़ कर रह गए । बूढ़ा आदमी है खाना तो देना पड़ता है ।

बूढ़े की बड़ी लड़की गोमा ब्याही हुई है । उसका दामाद भी यहीं रहता है । वह लकड़ी के किसी कारखाने में काम करता है, साठ रुपया वेतन मिलता है । मियां बीबी छत पर बरसाती में रहते हैं । कल उन में किसी बात पर झगड़ा हो गया था । वह क्रोध में आकर बड़े जोर जोर से कह रहा था । मैं बरदाश्त नहीं कर सकता कि औरत मर्द का सामना करे । इससे अच्छा है कि मरद मर जाये ।

इस आदमी का नाम गुरुदास राम है । अगर यह घटना घटित न होती तो मैं उसका नाम भी न बता सकता । इतने दिन यहाँ रहते हो गए, पर उससे कोई वास्ता नहीं पड़ा, जैसे वह यहाँ रहता ही न हो । सुबह काम पर जाता है । रात गए लौटता है । इतवार को अव-काश होता है तो मियां बीबी बरसाती में बैठे रहते हैं । यह गुरुदास राम सचमुच गौ है । कम से कम मैं उसे गौ समझता था । इस लिए उसका नाम जानने की कोशिश ही नहीं की । वह सुबह सिर झुकाये जाता है और शाम को सिर झुकाए लौट आता है । मैंने कभी उसे बात करते नहीं सुना जैसे मुह में जबान ही न हो ।

मुझे आशंका तक नहीं हुई थी कि उसे क्रोध भी आ सकता है । लेकिन उस समय उसकी आँखों से शोले बरस रहे थे, और होंठ कांप रहे थे । गोमा सहमी हुई कोने में खड़ी थी । वह बेचारी भी कभी

नहीं बोलती हर समय काम में ही व्यस्त रहती है । प्राणपन से इस गौ की सेवा करती है । मैंने समझा बुझा कर गुरुदास राम को ठंडा किया । वह खाना दर्मियान में छोड़ कर उठ खड़ा हुआ, फिर खाने बैठ गया पर कौर मुंह में डालने से पहले भीतर से गुस्सीला मवाद निकाल देना जरुरी था, वह बड़बड़ाया—"सारा दिन उधर जान खपाने जाते हैं और इधर यह चैन नहीं लेने देती ।"

यह वातावरण है और यह लोग हैं । इस गली पर ही बस नहीं सारे मौहल्ले में ही ऐसा मवाद भरा पड़ा है, जो हर समय लावे की तरह उबलता रहता है, और उबल कर बाहर आने के लिए अवसर ढूँढता रहता है । परे गली की नुक्कड़ पर हनीफ मियां के दुकान है । थोड़ी देर पहले जब मैं उधर से गुजर रहा था, तो वहां बहुत से लोग जमा थे । एक बुर्का पोश औरत जो बगल की गली से सौदा खरीदने आयी थी किसी लम्बे कद के दाढ़ी वाले मरद से लड़ रही थी । और औरत मोटी २ गालियाँ दे रही थी । इतने लोगों के सामने अपमान होते देखकर मर्द ने कहा—

"जबान संभाल कर रख वरना..."

"छोकरी के यार ! वरना क्या ? दाढी नोच लूगीं सूअर की ।"

वह गाली बकती हुई आगे बढ़ी और मर्द एक कदम पीछे को हट गया । औरत के दाँत पान चबाते चबाते स्याह हो गए थे और चेहरा भद्दा तथा क्रूर था । गालियाँ देती हुई वह चाची ताड़का से भी भयानक नजर आती थी ।

सिर्फ चन्द एक किशोर बालक हैं जो नंगे शरीर इधर उधर दौड़ते फिरते हैं और वातावरण से विरक्त होकर रोमांचकारी फिल्मी गाने गाते हैं । गाने जो उनकी जबान पर चढ कर बिल्कुल गलत और निरर्थक बन जाते हैं । मसलन अभी एक लढ़का गाते हुए नीचे से गुजरा है—

"अफ़साना कह रही हूँ दिले इतंजार का ।"

मैं काफी देर तक सोचता रहा कि यह 'दिले इतंजार' क्या बला है ? क्या मतलब है ? फिर खयाल आया कि उसने 'दिले बेकरार' को 'दिले इन्तजार' बना दिया है । कुछ भी हो गीत की मधुरता तो बनी रहती है और दिल बेकरार ही नहीं उसे इन्तजार भी तो है ।

शुरू शुरू में मैंने कोशिश की थी कि इन बच्चों की तरह वातावरण से विरक्त होकर पढने लिखने में व्यस्त रहूँ । पर वातावरण से विरक्त होकर गुरुदास राम जो गौ है वह भी नहीं रह सकता । फिर मेरे लिए तुम्हारे कथनानुसार जिस की बागी रूह कहीं चैन नहीं लेने देती ऐसा कैसे मुमकिन है । वातावरण मेरी कल्पना को प्रभावित करता है । और मेरी कल्पना वातावरण को प्रभावित करने की चेष्टा करती है । परिणाम यह है कि पढना लिखना सर्वथा छूट गया है । मैं सोचता हूँ और खयालों में तैरता हूँ ।

क्या बताऊं इस सोचने और तैरते रहने में क्या आनन्द है । अजीब- अजीब विचार मेरे मन में उठते रहते हैं । मैं अकेला तो नहीं हजारों हसरतें इस शून्य में तैरती रहती हैं । ये हसरतें मानव आत्माओं के टुकड़े हैं । ये जीवित हैं । मुझे उन पर प्यार आता है, और मैं उन्हें अपने पास बुलाता हूँ । हमदर्दी और प्यार की भूखी आत्माएं मुझे अपने मन का भेद सुनाने लगती हैं । उन की बात सुन कर मुझे असाधारण बल का आभास होता है । जैसे मेरे अन्दर कोई महान शक्ति उभर रही हो । और मेरा व्यक्तित्व अज्ञात और नई बुलन्दियों की ओर उड़ना चाहता है । लेकिन गहरा ओर मजबूत खोल इस हसरत को पूरा होने से रोक रहा है ।

मैं हर रोज यों ही सोचता हूं, यों हीं शून्यों में तैरता हूं और यों ही महसूस करता हूँ । लेकिन आज सुबह जब इन लड़कों की 'हा हू' से समस्त वातावरण जाग उठा तो मुझे हठात एक धक्का सा लगा जैसे खोल टूट गया हो । दबी घुटी मानवता फैल गई हो और उसकी महानता नई बुलन्दियों की ओर उड़ रही हो ।

क्रूरता के बीज

मनोहरलाल अपने तीसरे बच्चे को गोद में लिए दहलीज में खड़ा था, जैसे बड़ी देर से इन्तजार कर रहा हो। मेरे साइकिल से पांव नीचे रखते ही उसने पूछा—

'सुनाइए साहब, क्या खबर है आज की ?'

'अमृतसर में फिसाद फिर तेज हो गया।'

'क्यों क्या हुआ ?'

'खुल्लम-खुल्ला लड़ाई हुई, चार आदमी मरे और पन्द्रह जख्मी हुए।'

'बस, यह तो कोई बड़ी बात नहीं।'

'हाँ आजकल के फिसाद में चार आदमी मर जाना मामूली बात है।' अबकी जमुनादास ने कहा। वह भी सदा की तरह खबरें सुनने बाहर निकल आया था।

'और दस मकान भी तो जल गये ?' मैंने ख़बर का महत्व बढ़ाने के लिए आगे कहा, लेकिन उन दोनों के चेहरों पर कोई भाव प्रकट नहीं हुआ। वे यों खड़े एक दूसरे की ओर देखते रहे जैसे उन्होंने मेरी बात सुनी ही न हो।

'और कोई खास खबर ? मनोहरलाल ने बच्चे को कंधे से लगाते हुए दरियाफ्त किया।

'खास खबर कोई नहीं।' मैंने उत्तर दिया और साइकिल उठाकर अपने मकान में दाखिल हो गया।

मैं शाम को दफ्तर जाता हूँ और फ़िसाद और कर्फ्यू के कारण काम खत्म करके वहीं सो रहता हूँ। सुबह सवेरे उठ कर घर आता

हूँ और अखबार पहुँचने से पहले इन लोगों को हर रोज की चुनी हुई मोटी मोटी खबरें सुना देता हूँ। इसके अतिरिक्त कई बार वे अप्रकाशित और विशेष समाचार भी इन्हें मेरी जुबानी मालूम हो जाते हैं जो मैं सवेरे उठकर क्रीड पर पढ़ आता हूँ। इसीलिए यह लोग मेरे आने का इन्तजार किया करते हैं।

मेरे लिये भी खबरें सुनाना नियम सा बन चुका है। मैं रास्ते में ही सोच लेता हूँ कि आज कौन-कौन सी खबर उन्हें सुनानी हैं, जिसे सुनकर वह संतुष्ट हो जायें, कुछ सनसनी महसूस करें। आज भी मैंने दो खबरें सोची थीं। एक फिसाद के बारे में जो उन्हें सुना दी। दूसरी भी अगरचे अमृतसर से ही आई थी, समाज की बर्बरता पर निर्भर थी, लेकिन फिसाद से मुख्तलिफ ढँग की थी। इस खबर को बहुत ही जरूरी समझते हुए भी मैंने इसे मनोहरलाल और जमुनादास को सुनाना मुनासिब नहीं समझा। और अपने मन में ही रखे हुए चला आया, क्योंकि जब वे चार आदमियों के मरने और पन्द्रह के घायल होने की खबर सुनकर उदासीनता प्रगट कर सकते हैं, उनके चेहरे ठोस बने रहते हैं, तो एक नौजवान लड़की की आत्महत्या उनके नज़दीक क्या महत्व रखती है ?

लेकिन आत्महत्या का यह समाचार मेरे समस्त अस्तित्व पर छाया हुआ था। और इसका प्रभाव प्रतिक्षण तीव्रतर होता जा रहा था। मैं न जाने क्या कुछ सोच रहा था। दूर अतीत से उठती हुई आवाजें सुन रहा था—

'मैं तुम्हारे बिना जिंदा नहीं रह सकूँगी।'

'मैं भी तुम्हारे बिना जिंदा नहीं रहूँगा।'

मैं अपने सूने कमरे में दाखिल हुआ। लिखने की मेज पर जा बैठा। कितनी देर तक विचारों के प्रभाव में खोया रहा। और फिर डायरी उठाकर उसमें यह खबर लिख दी—

अमृतसर बारह जून:—चंद रोज हुए, चौक प्रागदास में एक नौज-

वान लड़के सोमनाथ ने खुदकुशी कर ली थी क्योंकि जिस लड़की से वह प्रेम करता था उसके मां- बाप ने उसके साथ लड़की का ब्याह करने से इन्कार कर दिया और उस लड़की ने जिसका नाम लीलावती है, विष खाकर आत्महत्या कर ली है और एक खत छोड़ा है जिसमें लिखा है कि मैं अपने प्रेमी के बिना जिंदा नहीं रह सकती ।

कई बार सनसनीखेज घटनायें भी सनसनी पैदा नहीं कर सकती, क्योंकि जब वे घटनायें आम होने लगती हैं तो मनुष्य उन्हें सुनने का इस कद्र आदि हो जाता है कि जिंदगी अपने स्तर से गिर जाती है और उसमें इन घटनाओं की तीव्रता ग्रहण करने का एहसास मिट जाता है ।

परसों मैंने इन्हीं मनोहरलाल और जमुनादास को खबर की जगह एक घटना सुनायी थी जो उसी रोज सुबह- सुबह बड़े डाकखाने के सामने घटित हुई थी । सात आदमी एक रेड़े में बैठे सब्जी खरीदने जा रहे थे कि किसी ने उन पर बम फेंका । दो आदमी हलाक और पांच घायल हुए ।

'सब मुसलमान होंगे' । मनोहरलाल सुनते ही बोल उठा ।

'और क्या; सब्जी-फरोश आम तौर पर मुसलमान होते हैं ।' जमुनादास ने कहा ।

'हा, गरीब अराईं थे' मैं बोला ।

उनके चेहरे खिल उठे । वे इतने प्रसन्न और संतुष्ट हुए कि उन्होंने मुझ से कोई खास खबर सुनने की जरूरत ही महसूस नहीं की ! उनके लिए दो हलाक और पांच जख्मी होने की खबर चार हलाक और पन्द्रह जख्मी होने की जगह अधिक महत्व रखती थी ।...

तीन महीने से गड़बड़ जारी है । इन्सान गाजर- मूली की तरह कट रहे हैं । लाखों- करोड़ों की सम्पति जलकर मिट्टी में मिल रही है । हिंदू मुसलमानों का और मुसलमान हिंदुओं का नुकसान सुनकर खुश होते हैं । मानव-हत्या की उन्हें तनिक परवा नहीं, कोई सामूहिक विचार नहीं, आदर्श नहीं । अपने सम्प्रदाय की भीषण

से भीषण बर्बर वीरता दिखायी देती है, बड़ाई और प्रसन्नता का कारण बनती है । हकूमत हर रोज सख्त और कड़े कानून लागू कर रही है, जिसके मारे जीना दूभर हो रहा है । सड़कों पर हर भलेमानस की मुजरिमों की तरह तलाशी ली जाती है । कर्फ्यू के कारण सूरज छिपते ही घर के भीतर बन्द होना पड़ता है और दिन चढ़े तक कोई घर से बाहर नहीं निकल सकता । सैर, तमाशे, मनोरंजन सब खतम लोग सब कुछ सहन कर रहे हैं । कोई इन कानूनों और दंगों की निंदा नहीं करता । जान का नुकसान उनके लिए कोई माने नहीं रखता । बर्बरता जीवन का अंग बन चुकी है ।

इस स्थिति में मनोहरलाल और जमनादास को लीलावती की आत्म-हत्या का समाचार सुनाना फिजूल है । आम हालत में भी शायद वे इस खबर को कोई महत्व न देते, क्योंकि उनके कोष में 'प्रेम' शब्द दर्ज ही नहीं; और अगर है तो पागलपन के अर्थ में । इससे अधिक कुछ नहीं ।

चार साल हुए, मनोहर की शादी हुई थी । बहुत से रिश्ते आते थे । लेकिन वह रिश्ता स्वीकार किया गया था जहां से अधिक दहेज मिलने की आशा थी । आशा ही नहीं, पहले से विश्वास दिलाया गया था । आखिर पत्नि आई । दहेज आया । और विवाह इस कद्र खुशगवार सिद्ध हुआ कि वे चार साल में तीन बच्चों के माता पिता हैं । सिर्फ मनोहरलाल ही नहीं; उसकी पत्नि भी प्रसन्न है, क्योंकि पति छोटे से एक कारखाने का मालिक है । घर में खाने पीने की कमी नहीं । वह पड़ौसिनों में बैठ कर बड़े गर्व से कहा करती है—

'हमारे यहां अकेले चूल्हे का खर्च तीन सौ रुपया महीना है । इतने रुपए का दूध आता है, इतने का घी और इतने की सब्जी...'

उसे सारी तफसील जबानी याद रहती है । इसलिए मनोहरलाल पत्नि की प्रशंसा करता है और बड़े शान से कहता है—

ब्याह करना माँ बाप का फर्ज है । आखिर मां-बाप औलाद के दुश्मन तो नहीं होते ! बुजुर्गों की रीति बहुत अच्छी है । जो शादियां लड़के और लड़कियों की मर्जी से होती हैं उनका नतीजा अच्छा नहीं होता ।

मनोहरलाल की तरह जमुनादास की शादी भी उसके मां-बाप ने की थी । लेकिन उसके विपरीत वह अपनी पत्नि से सन्तुष्ट नहीं । वह उसके साथ लड़ता झगड़ता रहता है । और इतनी निर्दयता से और क्रूरता से पेश आता है कि उसकी रक्त-रंजित आंखें देख कर बेचारी को गश आ जाता है और वह घन्टों बेहोश पड़ी रहती है । इसके बावजूद जमुनादास ने अपने व्यवहार में कोई संशोधन नहीं किया, उसके प्रति कभी नर्मी अथवा सहानभूति प्रगट नहीं की । उसे पत्नि से शिकायत है कि वह जिद्दी है, बदमिजाज है, उसका कहा नहीं मानती है ।

लेकिन लोग जानते हैं कि पत्नि में सब गुण हैं । वह निर्दोष है । उसका अपराध सिर्फ यह है कि पाँच साल के विवाहित जीवन में एक बच्चा भी नहीं जना । जमुनादास समझता है कि वह बांझ है; अगर वह मर जाए तो दूसरा विवाह करले ।

इस फर्क के बावजूद मनोहरलाल और जमुनादास जिन्दगी के एक ऐसे पथ पर इकट्ठे चल रहे हैं जहाँ न फूल खिलते हैं और न कांटे चुभते हैं । मैंने उन्हें घुलमिल कर बातें करते देखा है । मनोहरलाल कारखाने और कारोबार के सिलसिले में और जमुनादास अपने दफ्तर के सम्बन्ध में बातें सुनाया करते हैं । जबसे दंगा शुरू हुआ है उनकी बातचीत में एक नया और गम्भीर विषय शामिल हो गया है । और वे दोनों इस बात पर सहमत हैं कि मुसलमान निरे जाहिल और वहशी हैं । जान लेते जरा भी नहीं झिझकते । उनमें दया का लेशमात्र भी नहीं । लेकिन हिन्दू जन्म से ही भलेमानस हैं । वे जान लेना तो क्या किसी को जबान से भी कष्ट पहुँचाना पसन्द नहीं करते ।

और फसाद का विषय उनके जेहन पर इस क़द्र छाया हुआ है कि एक रमणी की आत्महत्या की बात उसमें किसी प्रकार भी घुस नहीं सकती । फिर उनसे यह आशा रखना कि ये उसके मुख्तलिफ पहलुओं पर विचार करेंगे और उसकी शिद्दत को महसूस करेंगे, उतना ही असम्भव था जितना कि अरण्ड के पेड़ में लाजवन्ती का गुण उत्पन्न होना ।

सिर्फ़ मनोहरलाल और जमुनादास ही की बात नहीं । दफ्तर में दस बारह आदमी मौजूद थे, मैंने जब यह खबर पढ़ कर सुनाई तो किसी की आत्मा में सनसनी उत्पन्न नहीं हुई । उन्होंने इसे ध्यान से सुना तक नहीं । मैं चाहता था कि इस खबर को नुमाया करके छापा जाए । लेकिन नुमायाँ करना तो एडीटर इन्चार्ज का काम था । मुझे तो सिर्फ़ ख़बर तैयार कर देनी थी । और मैं अपने तजुर्बे के आधार पर जानता था कि एडीटर इन्चार्ज उसे कोई महत्व नहीं देगा । वह कितने साल से अखबारनवीसी कर रहा है । अपने काम में खूब होशियार है । एक बोर्डनवीस किसी साइनबोर्ड की चमक-दमक और शब्दों की बनावट पर ध्यान रखता है, कि ताकि ग्राहकों की तबियत खुश हो जाए । उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं कि साइनबोर्ड पर क्या लिखा जा रहा है । लेकिन एक अखबार-नवीस को काम इससे कुछ ज्यादा है । जहाँ उसे अखबार का गेटअप सुन्दर बनाना होता है, वहाँ यह भी देखना होता है कि ग्राहक किस किसकी खबरें पढ़ना पसन्द करते हैं ? एडीटर इन्चार्ज 'आनन्द' इस पसन्द के अनुसार खबरें चुन लेता है और फिर उन्हें दो कालमी और चार कालमी बना कर प्रथम पृष्ठ पर नुमाया कर देता है । इस काम की माकूल तन्ख्वाह और तरक्की का ख्याल उसे हर वक्त रहता है । वह दिन पर दिन गम्भीर, ठस और निर्जीव होता जा रहा है । चुपचाप अखबार तैयार करता है और मशीन में छपने के लिए भेज देता है । मैं दो ढाई साल से उसके साथ काम कर रहा हूँ । इस

बीच में शायद एक भी अवसर ऐसा नहीं आया कि किसी पर भी खैराती राम 'आनन्द' ने आश्चर्य, प्रसन्नता अथवा सनसनी प्रकट की हो। जिस प्रकार मशीन इन खबरों को छाप देती है, वह उन्हें तैयार कर देता है।

जब मैंने यह खबर पढ़ कर सुनाई कि प्रागदास के चौक में चार पाँच रोज हुए, एक नौजवान सोमनाथ ने आत्म-हत्या की थी, आज उसकी प्रेमिका लीलावती ने भी आत्म-हत्या करली है और लिखा है कि मैं अपने प्रेमी के बिना जिन्दा नहीं रह सकती तो खैरातीराम आनन्द अपने एक वकील दोस्त के साथ बातें कर रहा था, जो इस कारण यहाँ आ जाया करता है कि अखबार में कभी-कभी उसका नाम निकल जाता है। इन दोनों ने मिल कर एक किताब 'कानून किराया' लिखी थी। वह बिक नहीं रही थी, क्योंकि मकान जल रहे थे अथवा लोग वैसे ही छोड़ छाड़ कर भाग रहे थे। फिर किराया या किराया सम्बन्धी कानून की कौन परवाह करे? इस बात की उन्हें चिन्ता थी, क्योंकि किताब उन्होंने खुद छपवाई थी। नफ़े की जगह टोटा पड़ रहा था। उन्होंने मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

'फिसाद में भी प्रेम-व्यवहार चल रहा है।'

'क्या खूब?' मैंने कहा। लेकिन असिस्टेण्ट एडीटर रूपचन्द जो हरेक बात में जरूर बोलता है और बोल कर हँस पड़ता है, अबकी भी बोल उठा—

'प्रेम की दुनियाँ ही अलग है। उसे फिसाद से क्या, और हँस कर मूँछों पर हाथ फेरा। रूपचन्द भी अजीब आदमी है, और इन मूछों की एक विचित्र कहानी है।

एक दिन उसने यकायक हमें यह बात सुनाई कि मैं अपनी पत्नि को छोड़ रहा हूँ, सम्बन्ध-विच्छेद कर रहा हूँ, यह पत्र लिख दिया है। बड़े डाकखाने पोस्ट करने जा रहा हूँ, ताकि जल्द निकल जाए।

पति पत्नि के सम्बन्ध के बारे में कोई बात मालूम हो तो लोगों

बड़ी उत्सुकता से सुनते हैं, कई आदमी बहुत दिलचस्पी लेते हैं। रूपचन्द की बात सुन कर हम सब चौंक पड़े और जानना चाहते थे कि आखिर मामला क्या है, क्योंकि हमने उसे हमेशा पत्नि की प्रशंसा करते सुना था। वह गुजरांवाला में कन्या-पाठशाला की मुख्य अध्यापिका है और रूपचन्द के कथानुसार सुन्दर है, योग्य है, कहानियां और लेख लिखती है। दफ्तर में जब कोई आदमी योग्यता और सुकीर्ति बयान करता था तो रूपचन्द अपनी पत्नि की योग्यता का जिक्र छेड़ कर फक्र महसूस किया करता था। उस पत्नि को यों मिनट सैकिन्ड में छोड़ देना अजीब बात थी।

'क्यों, कुछ झगड़ा हो गया है क्या ?'

हमारे दफ्तर में एक हृष्ट-पुष्ठ और पहलवान किस्म के एडीटर भी मौजूद हैं। पत्रकार का पेशा अख्तियार करने से पहले वे पुलिस में मुलाजिम थे। देखने में भी अच्छे खासे सुन्दर और आकर्षक मालूम होते थे। औरतों के मामले में विशेष ज्ञान रखते हैं। उन्होंने रूपचन्द से हमदर्दी जताई, तो वह बोला—

'क्या करूँ, कहा नहीं मानती। मैंने उसे लाहौर बुलाया था, पर वह आई नहीं।'

'किसी वजह से न आ सकी होगी ?'

'वजह कुछ नहीं। वह हमेशा ऐसा ही करती है। मैं तंग आ चुका हूँ।'

'फिर तुम्हारे अपने अन्दर कोई नुक्स होगा !'

'मेरे अन्दर कोई नुक्स नहीं'। रूपचन्द ने कहा और सफाई के लिए एक किस्सा भी बयान कर दिया कि वह ब्याह से पहले एक नौजवान से मुहब्बत करती थी जो सुन्दर भी है और तन्दुरुस्त भी। वे एक दूसरे के चिर-सँगी बन कर जीवन बिताना चाहते थे। लेकिन मां-बाप ने यह बात इस लिए पसन्द न की कि वह लड़का एक नीच कुल में उत्पन्न हुआ है और रूपचन्द एक उच्च कुल का व्यक्ति है।

इसलिए ब्याह उसके साथ हो गया । वह अब भी उस लड़के के साथ प्रेम करती है जो किसी तरह भी गवारा नहीं किया जा सकता ।

'देखिए औरत जिसके पास हो उसी की हो जाती है ।' पहलवान साहब ने कहा, क्योंकि वह औरतों के मनोविज्ञान में निपुण हैं—'अगर न हो तो यह आदमी का अपना कसूर है । तुम अपने अन्दर कुछ मर्दानगी पैदा करो । मुआफ़ करना, अगर चेहरे पर जरा मूंछें वगैरह हों तो इस तरह हीजड़े नजर न आओ ।'

मश्विरा माकूल था । रूपचन्द को पसन्द आया । और उसने वह पत्र नहीं डाला । और उसी दिन से मूछें बढ़ानी शुरू कर दीं; जो अब काफी बढ़ गयी हैं । वह गाहे-गाहे उन पर हाथ फेर कर अपनी मर्दानगी का विश्वास कर लेता है ।

वह अब भी पत्नी की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से करता है और उसकी योग्यता का जिक्र छेड़ कर गर्व का अनुभव करता है । शायद उनमें समझौता हो गया है, क्यों कि उसने कई बार बताया है कि वह इस मर्तबा गर्मी की छुट्टियों में लाहौर आयेगी ।

रूपचन्द के मुख से प्रेम की बात सुनकर मुझे उसकी पत्नी का ख्याल आया । शायद वह भी कोई लीलावती है, जिसने आत्महत्या के बजाय समाज से लड़ना और जीना बेहतर समझा ।

कुछ भी हो, मैं इस खबर को सनसनीखेज बना देना चाहता था कि अगर दफ्तर वालों ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया तो कम से कम अखबार के पाठक ही उसे ध्यान से पढ़ें, उसके महत्व को समझें और उसके मुख्तलिफ पहलुओं पर विचार करें । मैंने सोच-सोच कर हेडिंग निकाले—

एक रमणी रूढिवाद की भेंट चढ़ी—

और खबर लिखने के लिए क़ातिब को दे दी । लेकिन इसके बाद काम करने की रफ्तार प्रति क्षण सुस्त पड़ती गई । मुझे रह-रह कर याद आ रहा था—मैं भी तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकूँगा । फिर

एक रमणी का सुन्दर मुख कल्पना-पट पर उभर आया । वह घुल-घुल कर मर गयी थी । उसने अपना प्रण निभाया था । लेकिन मैं—मैं अभी तक जीवित हूँ । अगर इसे जीवन कहा जा सकता है । एक सोमनाथ और लीलावती की ही बात नहीं । न जाने कितने ही जीवन इस प्रकार नष्ट हो रहे हैं और समाज के कान पर जूं तक नहीं रेंगती, क्योंकि वह ऐसी बातों का आदी हो चुका है । और बर्बरता उसके अंग अंग में समा गई है । समाज का अत्याचार व्यक्तिगत अत्याचार से कहीं अधिक भयानक और ध्वंसकारी होता है ।

यह आत्महत्या इस अत्याचार के परिणामस्वरूप है । जब कभी ऐसी वारदात सुनने में आती है तो मेरे जीवन में अनेक घटनायें घूम जाती हैं । परसों खबर आई थी कि सरगोधा के एक नौजवान ने अपनी मर्जी के विरुद्ध ब्याह करने से इन्कार कर दिया । लेकिन मां-बाप ने इस इन्कार की कोई परवाह नहीं की और ब्याह कर देने पर अटल रहे । लड़के ने एक दिन पहले विष खाकर आत्महत्या कर ली ।

लेकिन आत्महत्या के लिए विषपान भी तो जरूरी नहीं । सहारन-पुर में एक औरत गाड़ी के नीचे कट मरी थी, क्योंकि उसे किसी मर्द से मुहब्बत थी और समाज उसके बीच दीवार बना हुआ था । और उस दिन एक साथ दो आत्महत्याओं की खबर आयी थी । उसमें दूसरा ही ढंग इस्तेमाल किया गया था—

करांची, ग्यारह फरवरी—'घरेलू झगड़े के कारण दो मृत्युओं की सूचना मिली है । एक बाईस वर्षीया औरत ने अपने आप को आग लगा कर आत्महत्या कर ली । और एक चौंसठ-साला पंजाबी औरत ने चार मंजिला इमारत से छलांग लगा कर प्राण त्याग दिये ।'

यहां जल मरना और छलांग लगाना कितना भयानक है । आदमी ऐसा भीषण काम क्यों करता है ? शायद इन लीलावतियों ने भी रूपचन्द की पत्नी की तरह आत्महत्या करने के बजाय समाज से लड़ना

और जीना बेहतर समझा हो । शायद अब लड़ने की सामर्थ्य न रही हो । और जीना दूभर हो गया हो । वर्ना आदमी हर हालत में जीना चाहता है । जीने के लिए विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करता है । जिन्दगी का प्यार बड़ी चीज है । निःसन्देह वह जुल्म इस प्यार से बड़ा भयानक होगा जो मनुष्य को आत्महत्या कर लेने पर मजबूर करता है ।

फांसी की सजा अत्याचार है । उसे मनसूख कराने के लिए आन्दोलन चल रहा है । लेकिन आत्म-हत्या के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठाता । शायद इस लिए कि आत्महत्या आदमी अपनी मर्जी से करता है लेकिन कोई यह नहीं सोचता कि अपनी मर्जी से कौन मरना पसन्द करता है ? फिर मरने वाले को कायर कह कर उल्टे जुल्म की पीठ क्यों ठोंकी जाती है ?

मैं सोच रहा था और काम कर रहा था । भीतर हलचल मची थी । किसी की दुःखद स्मृति आत्मा को कोंच रही थी । क्या यह आत्महत्याएँ यों ही होती रहेंगी पर मैं जितना सोच रहा था उतना ही काम की रफ्तार सुस्त पड़ती जा रही थी । एडीटर इन्चार्ज मेरे इस स्वभाव से परिचित है । वह टोकते टोकते तंग आ चुका है । इसलिए टोकना छोड़ दिया है ।

मुझे खुद अपनी जिम्मेवारी का एहसास रहता है । इस लिए हाथ तेज करने की बहुतेरी कोशिश करता हूँ । लेकिन जब दिमाग उलझन में पड़ा हो, जब आत्मा खोयी हुई चीज के लिए तड़प रही हो, जब अतीत की घटनायें याद आ रही हों, तो अनुवाद करना और हाथ के लिए तेज चलाना सम्भव नहीं ।

आखिर बारह बजे काम खत्म हुआ । एडीटर इन्चार्ज को मोटर घर छोड़ आयी । बाकी सब लोग वहीं सो रहे, क्योंकि मोटर के लिए हरेक को छोड़ आना मुमकिन नहीं । एक तो मिलिटरी की रोक-टोक फिर कर्फ्यू पास दिखाने पड़ते हैं । तालाशी ली जाती है और मुहल्ले

दूर-दूर हैं, मीलों का फासला ।

छत पर चारपाइयां बिछी थीं । चाँदनी रात थी । लेकिन फ़िजाँ कुछ धुँधली-धुँधली थी । इसलिए चांद का चेहरा कुछ उदास था । मैं चांद की ओर देखता रहा । उसकी उदासी का कारण जानने की कोशिश करता रहा । शहर कर्फ्यू में लिपटा हुआ सो रहा था । सड़कें सूनी और खामोश पड़ी थीं । गर्मियों की रातों में भी बारह बजे अटूट नीरवता थी । वर्ना हर वक्त चहल पहल रहती थी । लोग सिनेमा से आते थे । स्टेशन पर जाते थे । टांगों की खट-खट किसी समय भी बन्द नहीं होती थी । लेकिन जब से दंगा शुरू हुआ है, दिन छिपते ही मातम सा छा जाता है ।

मैं दंगे और आत्महत्या की बात सोच रहा था । खामोशी भयानक मालूम हो रही थी । मातम रूह में घुलता जा रहा था । और एक के बाद एक कितनी ही विषादपूर्ण घटनायें स्मृति-पट पर उभर रही थीं । शरदचन्द्र ने देवदास और पार्वती की कहानी शायद सच ही लिखी है । अचानक टॉलस्टाय की ऐना करेनिना का चित्र स्मरण हो आया । वह भी एक लीलावती थी, जिसने एक भिन्न समाज और भिन्न वातावरण में परवरिश पाई थी । फिर भी उसका ब्याह उसकी इच्छा के विरुद्ध हुआ था । उसे अपने मन का चितचोर नहीं मिला था । उच्चाधिकारी गम्भीर पति की सर्द तबियत उसकी आत्मा को गरमाने में असफल रही थी । आदमी बर्फ की सिल्ली पर तभी बैठा रह सकता है जब उसकी समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो जायें और उसका शरीर पथरा जाए । ऐना करेनिना जिन्दगी से प्यार करती थी । वह सचमुच जिन्दा रहना चाहती थी । प्रेम के परों से नीले आकाश की विशालता में उड़ना चाहती थी और वह उड़ती रही तो उसने रेलगाड़ी के नीचे कट कर खुदकुशी कर ली । प्रेम से वन्चित जीवन बेकार है । उसे उठाए रखना मुमकिन नहीं ।

कितनी तीव्रता और कितना त्याग था उस औरत के प्रेम में ?

टॉलस्टाय ने औरत का बेहतरीन चरित्र-चित्रण किया है । ऐना करेनिना हर समाज में मिलती है । प्रेम के लिए तड़प रही है । बन्धनों से विवश होकर आत्महत्या की मौत मर रही हैं । मनोहरलाल और जमुनादास ने ऐना करेनिना की आत्मा को नहीं समझा, टॉलस्टाय की इस विख्याति कृति का नाम तक नहीं सुना । उनके नज़दीक उपन्यास पढ़ने से आचरण बिगड़ता है । ब्याह करना मां-बाप का फर्ज है । बुजुर्गों की रीति बहुत अच्छी है । आचार और रीति—आवारण पर आवारण चढ़ता जा रहा है । जिन्दगी सुकड़ रही है, मिच रही है । विवश होकर आत्महत्या की मौत मर रही है ।

'प्रकाश, मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकूँगी ।'

'मैं भी तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकूंगा ।'

मैंने कहने को कहा था । अगर मेरी बात में सचाई होती तो मैं भी आज बिमला की तरह जिन्दा न होता । उसके प्रेम में सत्य था । लोहे के सौदागर पति का अपार धन उसकी आत्मा को पाने में असफल वह विवाह के छः महीने बाद तपेदिक से मर गई । किसी को यह भी मालूम न हुआ कि उसने आत्महत्या की है । वह समाज के जुल्म की शिकार हुई है । मैं उसे भुलाने की कोशिश करता हूँ । लेकिन भुला नहीं सकता । दिल में फांस अटकी हुई है । उसकी मृत्यु के बाद जंग शुरू हुई । मुझे काम मिल गया । मैं बेकार नहीं रहा । बहुतेरे मां-बाप अपनी लड़कियों का विवाह मेरे साथ कर देने को तैयार हैं । हो सकता है कि जो लड़की मुझे मिले वह बिमला से भी अधिक सुन्दर गुणवती हो । लेकिन क्या वह मेरी मृतक आत्मा को जीवित कर सकेगीं ? ब्याह हो जाना और बात है, लेकिन अपना जीवन साथी आप चुनने का अधिकार प्राप्त होना, वह दूसरी बात है ।

मुझे ब्याह में पत्नि प्राप्त करना पसन्द नहीं । मैं अकेले जीवन बिता रहा हूँ । शरीर की जगह लाश उठाए फिर रहा हूँ । जब

कभी आत्महत्या की कोई वारदात सुन लेता हूँ तो घबरा उठता हूँ। 'मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकूँगा।' बिमला से अपना प्रण स्मरण हो आता है। शून्य में गूँजता रहता है।

और अब रात की निस्तब्धता में मैं यही सोच रहा था कि मैं अपना प्रण निभा नहीं सका। मरने का साहस अब भी नहीं होता। सिर्फ़ इतना सोच कर रह जाता हूँ कि अगर मैं बेकार न होता तो बिमला के मा-बाप उसका विवाह दूसरी जगह कभी नहीं करते और वह यों तपेदिक की का शिकार न होती।

'ठक ! ठक'

जोर-जोर से धमाका हुआ। रात की नीरवता कांप उठी। सब लोग गहरी नींद सोए पड़े थे। थके हुए शरीरों को आराम की जरूरत थी। सुबह उठ कर फिर काम करेंगे बेचारे। लेकिन जब पहले दिन बम फटा था, वे इस आवाज को सुन कर एक दम चौंक उठे थे—कहीं बम फटा है। लेकिन अब आवाज आ रही थी और वे सो रहे थे। पहले दिन जब छुरे चल रहे थे तो तमाम शहर में सनसनी फैल गई। आतंक और घबराहट के मारे बाजार बन्द हो गये थे। लेकिन अब छुरे चलना और बम फटना साधारण बात हो गई है। जिन पर बीतती है, सिर्फ वही जानते हैं। बाकी लोग सुबह उठ कर अखबारों में पढ़ लेते हैं कि आज इतने आदमी मरे और इतने घायल हुये।

यह हर रोज का मरना सोमनाथ और लीलावती की आत्महत्या में भी मामूली बात बन चुकी है। कोई नहीं सोचता कि इन्सान इस कद्र वहशी क्यों बन गया है ? इसका कारण क्या है ? समाज ने जिस बर्बरता को सदियों से सोने में छिपा रक्खा है, उसने पागलपन का रूप क्यों धारण कर लिया ? हां, यह पागलपन है। बर्बरता का विकराल रूप है। समाज ने जिन रूढ़ियों की लाड़-चाव से परवरिश की है, वे अपना कर वसूल कर रही हैं। हजारों सोमनाथ और लीलावंतियों के साथ किया गया अत्याचार नासूर बन चुका है। उसके

शरीर में कोढ़ फूटा है । अब समाज का इस दशा में जीवित रहना सम्भव नहीं रहा । यह विवश होकर आत्महत्या की मौत मर रहा है, दम तोड़ रहा है ।

'ठक ! ठक !'

स्टेशन पर इन्जन गाड़ी के डिब्बों को इकट्ठा कर रहा था और उन के आपस में टकराने से अचानक जो आवाज़ उत्पन्न हो रही थी वह रात की नीरवता में गूंज रही थी । चाँद का चेहरा उदास था । लोग सोये पड़े थे । अगर सचमुच बम फटे तब भी वे नहीं जागेंगे, क्योंकि अब वे उसके आदी हो चुके हैं । बर्बरता जीवन का अंग बन गयी है ।

अब और तब

शीला का सिर नंगा था । बाल कुछ बिखरे हुए थे । जिन्हें वह कभी-कभी बाएँ हाथ से दुरुस्त कर लेती थी । वरना उसका समस्त ध्यान अपने काम पर केन्द्रित था । वातावरण से बेखबर वह रजाइया सीने में व्यस्त थी । वह जानती थी कि दिन भर मेहनत करके जितनी रजाइयों में धागे डाल देवेगी उतने ही पैसे मिल जाएँगे उसे । पहले दिन वह बड़ी मुश्किल से एक रजाई में धागे डाल सकी थी । अब दो ढाई में डाल लेती थी और वह काम की रफ्तार इससे कम होने देना नहीं चाहती थी । इसलिए उसका हाथ जल्दी-जल्दी चल रहा था वह अपने शरीर की सुधबुध भूल गई थी । वह एक कमीज और एक शलवार पहने हुए थी और रजाई के एक कोने से दूसरे कोने तक घूम रही थी । जहाँ बैठ कर उसने काम शुरू किया था सरका वहीं पड़ा रह गया था । जो बे-ध्यानी में सिर से खिसक गया था, जिसकी उसे अब तनिक परवाह नहीं थी । क्योंकि सिर ढांपने की चिन्ता करे तो काम में हानि होती थी । काम ज़रा अधूरा रहने से ठेकेदार बहुत सी मज़दूरी काट लेता था ।

सरकार फौज के लिए रजाइयाँ तैयार करवा रही थी । काम ठेके पर हो रहा था रूई भरने के बाद उन्हें सीना दरकार था । करौल बाग के पश्चिमी भाग में जो नई बस्ती बसी है वहाँ एक खुले मैदान में रजाइयाँ बिछी हुई थीं । और सैकड़ों औरतें उनमें धागे डालने का काम कर रहीं थीं उनमें अधिकाश वह औरतें थीं जो बरसों और पीढ़ियों से मजदूरी करती आ रहीं थीं । इसलिए

मेहनत मजदूरी करना उनका स्वभाव बन चुका था। इस काम में उन्हें जरा भी झिझक अथवा लज्जा महसूस नहीं होती थी। वे बड़े इतमिनान से अपना काम किए जा रहीं थीं और उनके बच्चे निकट ही खेल रहे थे।

लेकिन इनमें काफ़ी तादाद ऐसी औरतों की भी थी, जिन्होंने पहले पहल मैदान में पग धरा था। उन्हें इस स्थान तक पहुँचने में बहुत कुछ मानसिक दुविधा का सामना करना पड़ा था, और जब वे आई थीं, तो एक अप्राकृतिक भावना, एक अनमनापन उनके मस्तिष्क पर आच्छादित था। साँस फूली सी जान पड़ रही थी, जैसे कोई दीवार फाँदनी पड़ी हो, बहुत से असूल तोड़े हों।

मेहनत को मजदूरी में परिवर्तित करने का उनका यह पहला अवसर था। शीला भी ऐसी ही औरत थी। उसने बहुत सी प्रतिकूल परिस्थितियों में मेहनत मजदूरी का फैसला किया था और जब पहले दिन अपने पति कृपाराम से काम पर जाने की आज्ञा माँगी थी तो उसे बड़ा आघात पहुँचा था, जैसे उसकी आत्मा को बिजली ने छू दिया हो। काफ़ी देर तक वह कुछ समझ न सका।

रोशनी से रिक्त आँखों से शून्य में झाँकता रहा। जब शीला ने अपनी बात फिर दोहराई तो उसने विवश नेत्रों से उसकी ओर देखा और चुप रह गया। उसकी जबान से एक शब्द भी न निकल सका। जब शीला चली गई तो वह काफी देर तक इसी अवस्था में बैठा जाने क्या सोचता मन ही मन कुढ़ता और झुँझलाता रहा। कृपाराम पश्चिमी पंजाब से उजड़ कर दिल्ली आया था। बहुत दिनों वह शरणार्थी कहलाता रहा। लेकिन उसे और उसके दूसरे साथियों को नाम से चिढ़ थी, क्योंकि वह किसी की शरण नहीं आए थे, समय की एक तूफानी और भयँकर लहर ने उन्हें यहाँ ला पटका था। इसलिए सरकार ने शायद उनकी भावनाओं का आदर करते हुए उन्हें पुरुषार्थी कहना शुरू किया, लेकिन कृपाराम को यह नाम भी पसन्द

नहीं आया । वह इसका अर्थ समझने में असमर्थ था । यह नाम और यह शब्द तो क्या उसे अपनी इस नई जिन्दगी से ही कोई अनुराग नहीं था । वह सिर्फ कृपाराम था और उसे अक्सर अपना अतीत स्मरण हो आता है ।

मियाँ वाली जिला के एक गाँव कसूर कोट में उसकी दूकान थी । गाँव की आबादी, दो ढाई हजार के करीब थी । चार-पाँच घर हिन्दुओं के थे । बाकी सब मुसलमान थे । कृपाराम का कारोबार अच्छा चलता था । घर के मकान, ढोर छोर डंगर थे । दूकान के अलावा बनिज व्यापार था । वह ठाठ से रहता था । यह सारा व्यवहार उसे बाप दादा से विरासत में मिला था और वह उनकी दी हुई सम्पत्ति को बढ़ा रहा था ।

गाँव के बीच में उसका पक्का मकान था । उसमें कई कमरे थे और एक तहखाना था जिसमें वह नकद रुपया और जेवर छिपा कर रखता था । जेवर शीला के नहीं, गाँव की औरतों के थे । लोग उन्हें उसके पास गिरवी रख जाते—जो एक बार उसके तहखाने में जा कर, कम बाहर निकलते थे । अपने जेवर और कीमती कपड़े रखने के लिए शीला के पास अलग लोहे का सन्दूक था, जिस में दो मजबूत ताले लगे रहते थे ।

कृपाराम के नजदीक शीला खुद ऐसी वस्तु थी जिसे रुपए और जेवरों की भाँति छिपा कर रखने की जरूरत थी । बल्कि रुपए और पैसे से भी अधिक रक्षा का सवाल था । उसके साथ कुल की प्रतिष्ठा सम्बन्धित थी । इसलिए कृपाराम बड़ी मुस्तैदी से शीला की देखरेख करता था । बस चलते उसकी हवा तक मकान से नहीं बाहर निकलने देता था । क्या मजाल जो गैर मर्द की परछांई तक उस पर पड़ जाए ।

जब तक उसे गांव में अपने मकान के अन्दर रहना नसीब हुआ वह शीला की इसी प्रकार हिफाजत करता रहा । वह उसकी पत्नि

थी, उसका काम पति की आज्ञा का पालन करना था । जब से वह ब्याही आई थी कृपाराम ने नहा कर अपनी धोती आप नहीं छाटी थी। घर का सब काम उसे करना होता था । कृपाराम का फर्ज़ उसके काम की दाद देना नहीं बल्कि नुक्स निकाल कर लड़ पड़ना था ।

शीला गृहस्थी औरत थी । अगर, एक गृहस्थी औरत के रूप-रंग की भी परख हो सकती है तो वह सुन्दर थी । उसके नक्श तीखे, रंग गोरा, आँखें मोटी-मोटी और चेहरा गोल-गोल । यह उसे आप पता नहीं था कि उस पर जवानी कब आई क्योंकि छोटी उम्र में ही उसकी शादी कृपाराम से हो गई थी । कृपाराम को किसी प्रकार भी सुन्दर नहीं कहा जा सकता । उसका शरीर भारी और रंग काला था और चेहरे पर चेचक के दाग थे और होंठ मोटे-मोटे थे । इसके अलावा उसे देख कर लगता था जैसे उसकी खाल भैंसे की तरह सख्त और खुरदरी हो । उसके अँगों में कोमलता का लेशमात्र भी नहीं था। आत्मा तक भावशून्यता में लिपटी हुई सी जान पड़ती थी ।

आसामियों पर वह जब्र करता था, उसे अपने धन दौलत पर मान था और इसी के बलबूते पर वह खुद शीला पर जब्र करता था। वह अपने कारोबार को बढ़ा कर बहुत बड़ा सेठ बन जाना चाहता था । जिस प्रकार उसके घर में धन दौलत थी, उसी प्रकार शीला थी । इससे अधिक उसका कोई व्यक्तित्व नहीं, कोई महत्व नहीं । उसने कभी उसकी दिलजोई नहीं की, उसके रूप की प्रशसां नहीं की ।

उसे औरत भी विरासत में मिली थी ।

लेकिन जब देश का विभाजन हुआ तो उसे अपना गाँव छोड़ कर भागना पड़ा और वह जयदाद भी छोड़ देनी पड़ी जो उसे प्राणों से कुछ कम प्रिय न थी । वह बड़ी मुश्किल से चन्द जेवर और रुपया बचा कर ला सका था फिर शीला उसके साथ आ गई थी । जगह-जगह की ठोकरे खाता हुआ वह दिल्ली पहुँच गया और

यहीं रहने लगा ।

कुछ दिन शरणार्थी कैम्प में गुज़ारे । वहाँ सरकार की ओर से राशन मुफ्त मिलता था और किराया वगैरा कुछ न देना पड़ता था । इसलिए गाँठ का पैसा महफ़ूज़ रहता था । लेकिन वहाँ एक मुसीबत थी । और यह मुसीबत उसे अपने उखड़ कर आने से भी अधिक खटकती थी । यहाँ शीला को छिपा कर रखने का कोई प्रबन्ध न था । हर किसी की दृष्टि उस पर पड़ती थी और वह भी निर्लज्जता से टुकर-टुकर दूसरों की ओर ताकती रहती थी जैसे चिड़ियाघर में आ गई हो । जैसे जबसे पैदा हुई है, लोग न देखें हों ।

सामने वाले कैम्प में मेछूपुरे का मुलखराज रहता था । उसे देख कर कृपाराम बहुत कुढ़ता था । जी में आता था कि उस पर कोई इल्ज़ाम लगा कर कैम्प से निकाल दे । मुकदमा चले, जेल हो और अंडेमान भेज दिया जाए ।

मुलखराज, पच्चीस-छब्बीस वर्ष का स्वस्थ नौजवान था । मुखाकृति आकर्षक थी । बड़ा ही मिलनसार था । सबके साथ घुल मिल कर रहता था । हमदर्दी से पेश आता था । दूसरों का कोई अगर काम बन पड़े तो वह उसे करके प्रसन्न होता था । सब कैम्पवासी उसकी प्रशसां करते थे । मर्द, औरत और बच्चे सब उससे हँस कर बोलते थे । लेकिन कृपाराम को वह धूर्त और छलिया जान पड़ता था । वरना क्या मतलब जो वह औरतों से यों सपर-सपर बातें करे और हँसे । जब वह शीला से बात करता तो कृपराम की छाती पर सांप लोट जाता । और आगे का मुस्कराना तो और भी नागवार गुज़रता । उसके निकट यह निर्लज्जता की सीमा थी । वह इस हरकत के लिए शीला को कई बार सख्त से सख्त बातें कह चुका था । लेकिन शीला को इसकी तनिक भी परवाह न थी । वह उसे अक्सर मुलखराज से हँसते, बातें करते देखता था ।

एक मुलखराज ही क्या वह उसे किस-किस से बाते करने से

रोके । भाँति-भाँति के लोग इकट्ठे हुए थे । सभी मिलजुल कर रहते थे । मैदान में कैम्प लगे हुए थे । बीच में कोई दीवार नहीं खींची थी । एक दूसरे से सुख दु:ख कहना होता था । आमतौर पर चौके चूल्हे की चीजों की कमी थी । जो कुछ बर्तन भांड़े बच कर आ सके थे, उन्हें औरतें आपस में ले देकर इस्तेमाल करती थीं ।

शहर के लोग मेल जोल बढ़ाने में बहुत ही निपुण थे । बात करते जरा भी नहीं झिझकते—

"बहिन जी तुम्हारे घर कहाँ हैं ?"

"सब खैरियत से तो आगए !"

सैंकड़ों सवाल करते और जवाब देना ही पड़ता । उनकी औरतें भी इतनी चंचल थीं । फिरकी की तरह इधर-उधर घूमती फिरतीं । सिर नंगे, सिर्फ ब्लाउज और पेटीकोट पहने हुए । खुले आम सामने नल पर कपड़े धोतीं, और मर्दों की भांति सिर्फ़ एक कपड़ा बांध कर वहीं नहाने लगतीं । मर्द चाहें तो निगाह नीची करलें । मगर उनकी निगाहें जरा न झुकतीं ।

कृपाराम शर्म के मारे जमीन में गड़ा जाता था । चाहता था कि इस दलदल से दूर भाग जाए । उसने करीबी कैम्पों में कितनी बार शिकायत की थी कि औरतों को इस निर्लज्जता से रोका जाए । यह सब कुछ सभ्यता और धर्म के विरुद्ध है । हमने बड़ों की मर्यादा छोड़ी है तभी तो यहाँ तक पहुँचे हैं । जानता था कि लोग उसकी बातों पर जरा ध्यान नहीं देते, लेकिन वह अपनी कहे जा रहा था । जिसे जरा हमदर्द देखता था उसके पास अपना दुख ले बैठता था । यहाँ तक कि जब शरणार्थी सभा के स्वयंसेवक यह प्रचार करने आते कि हम कब तक ऐसे बैठे रहेंगे, सरकार से माँग करें कि वह हमें बसाने का अपना वादा पूरा करे तो कृपाराम उन्हें भी अपनी राम कहानी सुनाने लगता—"और तो सब कुछ पाकिस्तान में लुटा आए हैं– एक इज्जत बची है, वह भी महफूज नहीं ।

कोई ओट नहीं, पर्दा नहीं । बहू-बेटियों की आंख का पानी मरता जा रहा है ।

शीला को उसकी हर समय की यह कल-कल अच्छी नहीं लगती थी, वह कई बार उससे उलझ पड़ी थी और तुनक कर कहती थी— "और किसी को तो अपनी बहू बेटी की चिन्ता नहीं; एक तुम्हारी ही इज्जत लुटी जा रही है । बड़े ऐसे आये हैं कहीं के । मुझे मक्खी बनाकर डिब्बी में बन्द कर लो ।"

उसे शीला की यह जबान-दराजी अच्छी न लगती थी । जब वह गाँव में रहता था तो उसे कभी मुंह खोलने की भी आज्ञा नहीं दी गयी, मगर यहाँ दूसरों को क्या तमाशा दिखाए जब कभी आपस की कहा-सुनी में तनिक ऊंचा बोलने की नौबत आई तो लोगों ने शीला को लानत मलामत करने की जगह उल्टा उसे बुरा भला कहा, और वह मन मसोस कर रह गया ।

शीला दिन-दिन बदलती जा रही थी । दूसरी औरतों की रविश अपना रही थी । पहले पहल वह विवश होकर दूसरे मर्द से बात करती थी लेकिन अब बात करना अपना अधिकार समझती थी । पहले वह किसी की दृष्टि अपनी ओर उठते देखकर छातियों पर बड़ी साव-धानी से कपड़ा ढाँप लेती थी, पर अब समझती थी कि कोई देखता है तो देखता रहे, मेरा क्या लेगा । न उसका अपना शरीर शहद है, और न उस पर पड़ने वाली निगाहें मक्खियाँ हैं जो उसे चाट लेंगी । वह दृष्टि की स्निग्धता से भी विरक्त हो गई । अपने आप को छिपा कर रखने की बजाए उसे अपने अतीत पर क्रोध आता था । कृपा-राम पर क्रोध आता । जो उसे दरवाजे से बाहर झाँकने से भी रोका करता था । वह क्यों उस पर अपना पदाधिकार स्थापित किए हुआ था ?

वह जितना ही इन बातों को सोचती थी उसे कृपाराम उतना ही बूढ़ा और असुन्दर जान पड़ता था । वह यहाँ तक सोचने लगी थी,

कि उसे क्यों एक अयोग्य व्यक्ति से नाहक बांध दिया गया ।

जब वह दूसरे मर्दों के साथ बैठ कर दंगों की बातें करती, तो उसे वह अत्याचार स्मरण हो आते जो कृपाराम उस पर ढाया करता था ।

कृपाराम दूकान पर व्यस्त रहता था और वह घर में अकेली बैठी तंग आ जाती थी । घर में सास, ननद अथवा छोटा बच्चा तक न था, जिससे बात करे, मन बहलाए । एक दिन वह यों ही उठ कर ड्योढ़ी के द्वार तक आ गई और किवाड़ की दराज में से बाहर झांकने लगी । सहसा उस खिड़की से जो दुकान में खुलती थी कृपाराम भीतर आ गया । शीला को बाहर झाँकते देख कर उसके तन-बदन में आग लग गई । वह उसे चुटिया से पकड़ कर घसीटता हुआ अन्दर ले गया और फर्श पर पटक कर ऊपर से चार-पाँच लातें जमा दीं ।

अब उसे लगता था कि वह ये अत्याचार नाहक सहन करती रही है । इसलिए अब अगर कृपाराम एक बात कहता तो वह चार सुनाती । और जिस हरकत से वह नाराज होता था उसे बार २ दुहराती, मुलखराज से बातें करके उसे एक प्रकार की सांत्वना प्राप्त होती थी । वह कृपाराम को दिखा २ कर उससे बोलती और मुस्कराती थी । अब उसे कैम्प के किसी भी मर्द से बात करते झिझक महसूस न होती थी ।

कृपाराम ने जब देखा कि शीला हाथ से निकलती जा रही है, सीधी बात कहने से मुँह नोचने को आती है, तो उसने दिल पर जब्र करके कैंप छोड़ दिया । बड़ी दौड़-धूप के बाद उसे करौलबाग़ में एक कमरा किराये पर मिल गया और वह शीला को लेकर उसमें रहने लगा ।

लेकिन अब खर्च की चिन्ता सिर पर सवार हुई । दो चार दिन में ही उसे अपनी यह भूल मालूम हो गई कि पहले यह बातें क्यों न

सोचीं । मकान का बीस रूपया किराया पेशगी देना पड़ता और राशन बाज़ार से खरीदना पड़ता था, इतना क्या कम था कि बिना पगड़ी दिए उसे यह कमरा किराये पर मिल गया । जैसे २ दिन गुजरते जाते थे, चिन्ता बढ़ती जाती थी । पहले विचार था कि सरकार कुछ सहायता करेगी । पाकिस्तान में वह जो जायदाद छोड़ आया था उस का कुछ मुआवजा मिलेगा । पर यह सब कुछ न हो सका । उसने अपना केस रजिस्टर करा दिया था । मुआवजा मिलने की आशा थी, मगर जब तक कुछ नहीं मिलता तब तक तो खर्च उसे ही चलाना था ।

कृपाराम ने जीविका साधन की खोज शुरु की । जान-पहचान के कई आदमियों ने छोटा मोटा कारोबार चलाया था । मसलन, महाशय लुडेंदाराम ने लाँडरी निकाली थी और लाभू खतरी ने हलवाई की दूकान । वह चाहता था कि इन में से किसी न किसी के साथ साझा करले, लेकिन कोई सहमत न हुआ । काम इतना थोड़ा था कि उनके अपने टुकड़े मुश्किल से चलते थे । आखिर उसने जिस कुल-प्रतिष्ठा को इतनी देरसे संभाल रखा था, उसे तिलांजलि दे दी और फलों का खोंचा लगाने का फैसला किया । एक दिन, सुबह-सबेरे वह सब्जी मंडी गया, केले संतरे खरीद लाया और बाजार में बैठ कर बेचने लगा ।

अब कृपराम के लिए यह बिलकुल नया काम था और यों भी बाजार में केले संतरे बेचने वालों की कोई कमी न थी । हजारों शरणार्थी दिल्ली में आकर बसे थे । उनमें अकसर छोटे दुकानदार और खोंचेवाले थे । उन्होंने बहुत पहले यह काम शुरु कर दिय था और ऐसी जगह पर कब्जा कर लिया था जहाँ पेट भरने लायक बिक्री हो जाती थी ।

कृपाराम बहुत कोशिश करके आठ-दस आने से अधिक न कमा सकता था । जिस दिन उसे सवा तेरह आने बचत हुई, उस दिन वह बहुत ज्यादा खुश हुआ था । रात गए तक बैठा पैसे गिनता रहा ।

कई बार गिन चुका था, पर तबियत नहीं भरती थी। जी में आता था कि रात भर गिनता ही रहे, जैसे वह सवा तेरह आने नहीं सवा तेरह हजार रुपये हों। गांव में रहते उसने एक दिन में कितने ही सवा तेरह आने कमाये थे, पर उसे इतनी प्रसन्नता कभी नहीं हुई थी।

कभी २ बिक्री कम होती इसलिए एक दो आने का नुकसान रहता था। हाँ, फल अवश्य बच जाते थे। उन में कुछ केले खास कर ऐसे होते थे जिन्हें दूसरे दिन उठा कर रखने में खराब होने का अंदेशा होता था। कृपाराम उन्हें खा लेने में नफ़ा समझता था। जितने फल खाता था उतनी अनाज में किफायत हो जाती थी। कई बार मियाँ-बीबी शाम को रोटी ही न बनाते थे।

फल के तौर पर फल खाना अच्छी बात है। लेकिन विवश होकर भोजन के स्थान पर फल खाना पड़े तो मन शीघ्र ऊब जाता है। कृपाराम को विवश होकर फल खाने पड़ते थे। कई बार जरूरत से अधिक खाने पड़ते थे। जिसके कारण बदहज़मी की शिकायत रहने लगी। लेकिन उससे फल खाना न छूटा। बदहज़मी बढ़ी और पेचिश बन गई। फल बेचना तो दरकिनार घर से बाहर निकलना भी असम्भव हो गया।

कृपाराम मरते २ बचा। दो महीने चारपाई पर पड़ा रहा। करीब ही एक वैद्य की दुकान थी। शीला उसे बुला लाती थी और उससे दवाई ले आती थी। दवाई के अलावा जरूरत की दूसरी चीजें भी खुद उसे खरीद कर लानी पड़ती थी। कृपाराम को यह पसंद नहीं था कि वह बाजार जाये और दुकानों पर घूमती फिरे। मगर क्या करे बिमारी के हाथों विवश था। इतना क्या थोड़ा था कि शीला की सेवा-शुश्रूषा से जान बच गई।

वह अभी चारपाई पर पड़ा था, पर स्वस्थ हो रहा था। इस बीच में एक परिवर्तन आया। उसे अपना शरीर हल्का-हल्का सा महसूस होता था, जैसे शरीर से एक मोटी सी झिल्ली उतर गई हो,

अथवा अन्दर से मैल धुल गया हो । अब शीला को देखने का अंदाज भी बदल गया था । निगाहें अकसर उसके चेहरे पर गड़ती थीं । वह सुन्दर और प्यारी जान पड़ती थी । कृपाराम का बोल भी अब सख्त और खुरदरा न था । उस में मिठास आ गया था ।

शीला ने भी शायद इस तब्दीली को देख लिया था । उसे भी कृपाराम को देख कर घृणा नहीं होती थी । वह और भी लगन से उसकी सेवा करना चाहती थी । वह जानती थी कि बीमारी भले ही दूर हो गई है लेकिन कृपाराम अभी पन्द्रह बीस दिन और कोई काम नहीं कर सकेगा । इस लिए वह खुद काम करना चाहती थी । एक दिन बोली—"मंगो और बसंती रजाइयाँ सीने जाती हैं, मैं भी सीने चली जाऊँ ।"

"तुम—तुम मजदूरी करोगी ?" कृपाराम प्रस्ताव सुन कर चकित रह गया ।

"जब सब जाती हैं तो मुझे कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं ।"

कृपाराम चुप हो गया । अपनी और घर की कैफियत का दिल में निरीक्षण किया फिर दबी जबान से बोला—

"कोई कहेगा तो क्या कहेगा ?"

"कहने को कौन लग बैठा है यहाँ सभी परदेशी हैं ।"

शीला ने उत्तर दिया और कहा—कहने सुनने की बात ही नहीं रह गई । जिससे जैसा बन पड़ता है पेट का धंधा पूरा करता है ।"

उस दिन से शीला रजाइयाँ सीने का काम कर रही थी । शुरू शुरू में वह मजदूर औरतों से कतराती थी, दूसरी शरणार्थी औरतों के साथ उनसे जरा फासले पर बैठती थी । रफ्ता-रफ्ता वर्ग-भेद मिट गया । वह उनसे मिलने जुलने और बातें करने लगी । उनके बच्चों को देखकर खुश होने लगी ।

कृपाराम की निगाह अब और भी बदल गयी है । उसे शीला के चेहरे पर साहस और दृढ़ता की झलक दिखाई देती है । उसकी मुखा-

कृति ठोस और मजबूत बनती जा रही है । अगर किसी कारण नाराज होकर वह उसके साथ सख्ती से पेश आना चाहे तो नहीं आ सकता । उस पर किसी प्रकार का सन्देह करना तो खुद उसे अपनी हिमाकत और कमीनगी जान पड़ता है ।

गडोलना

गडोलना चौखट के करीब खूँटी पर लटक रहा था और विजय इधर-उधर दौड़ता फिरता था । उसकी दृष्टि गडोलने पर जा पड़ी और वह उसे उतारने के लिए ज़िद करने लगा ।

एक महीने पहले जब उसने गडोलना छोड़ कर बिना किसी सहारे के अपने आप आगे डग भरा था, तो उसकी माँ एक दम खिल उठी थी और आंखों में उल्लास भर कर पड़ोसिन को पुकारा था—"बहन जी ! बहन जी ! ! जरा इधर आना ।"

बच्चे आम तौर पर दस ग्यारह महीने अधिक हुआ, तो साल भर के होकर चलना सीख जाते हैं; लेकिन विजय पौने दो साल का हो गया, उसने अभी तक चलना नहीं सीखा था । जब वह घिसट-घिस कर आगे सरकता तो मां का मन दुख और विषाद से भर जाता और यह दुःख उस समय और भी अधिक हो जाता, जब पड़ोसिन विजय को पँगला कह कर पुकारती, मां सोचने लगती—"क्या वह वाकई पँगला है ? क्या उसके जीवन में वह दिन कभी नहीं आएगा, जब वह अपने पांव पर खड़ा होकर चलेगा ? उसकी ननद का हर एक बालक साल भर का हुआ नहीं कि चलने लग जाता है । सामने वाली शान्ति की लड़की विजय से छः महीने छोटी है, लेकिन खूब चलती है और हाथों को मटका कर नाच दिखाती है । फिर उसका विजय क्यों नहीं चलता ? वह सचमुच पँगला तो नहीं ? क्या वह बैसाखियों के सहारे चला करेगा ? शायद बैसाखियों की भी आवश्यकता न पड़े, वह उम्र भर घिसटता ही रहे ।

घिसटता ही रहे:— कितना भयंकर था यह विचार । क्या उस ने अपूर्ण जिन्दगी को जन्म दिया था ?

माँ का दिल कांप उठता था। जी में आती थी कि पड़ोसिन से साफ-साफ कहदे कि बहन तुम उसे पँगला न कहा करो । ऐसी बात सुन कर मेरा मन दुखता है । वैसे कहने को वह कई बार कह भी चुकी थी—"नहीं बहन, मेरा लाल पँगला नहीं है । बीमार रहा है, टांगें तनिक कमजोर हैं । शरीर में जान आने दो, खूब चलेगा, खूब दौड़ेगा ।"

एक कारण और भी था, जिसे कहते हुए संकोच होता था, लेकिन वह स्वयं जानती थी कि दूसरा बच्चा पेट में जल्द पड़ गया । छातियों का दूध सूख गया । विजय साल भर का भी होने नहीं पाया था कि मुन्नी उत्पन्न हो गई थी । अपने पहले के ही लाल को न वह दूध पिला सकी और न पालन पोषण ही ढंग से कर सकी । माँ के दूध में वल रहता है जो बच्चे को सुन्दर और स्वस्थ बनाता है । जब वह लोरी देकर उसे अपने स्तनों से दूध पिलाती है, तो वह पीते ही पीते उसके शरीर का अंग बन जाता है । बाहर के दूध में यह अद्भुत चमत्कार कहां । विजय ने आज तक बाहर ही का दूध पिया है । बंधा-तुला । क्या बनता है । इससे मां बेचारी के तो वश की कोई बात ही नहीं थी । यदि वह उसे अधिक नहीं पिला सकी, तो उसकी किस्मत में इतना ही लिखा होगा ।

इन सब बातों से मां को तसल्ली न होती । बेटे का पँगलापन, उसे अपना पँगलापन जान पड़ता और विजय को घिसटता देखकर जैसे उसका मन रोने लगता । वह उसे दोनों हाथों से पकड़ कर खड़ा करती । पुचकार दुलारकर उसे अपने पांव पर खड़ा करती । खड़ा होना बच्चे को भी भला लगता और वह मुस्करा देता । माँ प्रसन्न होती और स्नेह भरी लोरी देती । —"चल मेरे राजा ठुमक ठूँ, चल मेरे राजा ठुमक ठूं !" लेकिन राजा चलने की बजाय मुँह बिसोर देता।

माँ के सहारे के बावजूद कमजोर टाँगे शरीर को संभाल न सकती और वह उसके हाथों से निकल कर धरती पर लेट जाता जैसे माँ का दुलार उसे पसन्द न हो, जैसे विरोध भाव से कह रहा हो कि अब चलना मेरे वश का रोग नहीं है तो मुझे तुम क्यों नाहक परेशान करती हो ।

चलना और मुँह बिसोरना साथ-साथ चलता रहा । आखिर एक दिन माँ का सहारा लेकर वह आप ही आप अपनी कमजोर टांगों पर उठ खड़ा हुआ। माँ का मन खुशीसे नाच उठा, जैसे आज उसे विश्वास हो गया कि उसका लाल लंगड़ा नहीं, पंगु नहीं । वह चल सकेग उसकी टाँगों में इतनी शक्ति है कि वह दौड़ता हुआ संसार के एक छोर से दूसरे तक जा सकेगा । मां ने असीम ममता और स्नेह से उसे गोद में उठाया, मुँह चूमा, और फिर उसे दीवार के सहारे खड़ा कर दिया । जब पीठ दीवार से लगा कर माँ ने उस के हाथ छोड़े तो विजय एकदम चकित रह गया । उसका नन्हा-सा मन उल्लास और आश्चर्य से भर गया । यह क्या "नई—एकदम नई बात !" उसने अपने जीवन में बहुत बड़ा मरहला तै किया था । उसे अब माँ के सहारे की आवश्यकता नहीं थी। वह भूमि से ऊंचा उठ गया था । उसने दोनों हाथ जोर-जोर से हिलाए और ताली सी बजाता हुआ मुस्करा कर माँ की ओर देखने लगा ।

"चल ! आगे बढ़, पकड़ मुझे" मां ने हाथ बढ़ा कर उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी । लेकिन विजय के निर्बल शरीर में इतना बल नहीं था कि वह दीवार का सहारा भी छोड़ दे । दीवार के सहारे भी वह कुछ मिनट ही खड़ा रह सका । फिर थक कर धम से पृथ्वी पर गिर पड़ा । और रोने लगा ।

माँ ने उठा कर उसका मूँह चूमा और लोरी देकर चुप करा दिया ।

और माँ ने देखा कि उसके बाद विजय स्वयं ही दीवार के सहारे खड़ा होने की इच्छा प्रकट करता है । जब माँ उसे खड़ा कर देती

तो वह प्रसन्न होता और लगातार कई मिनट तक उसी प्रकार खड़ा रहता। धीरे २ उसने शरीर को यों हरकत देना आरम्भ की, जैसे वह दीवार को छोड़ कर आगे बढ़ना चाहता हो। दौड़ कर मां की गोद में आ जाने की इच्छा रखता हो।

इस बीच में यह गडोलना अचानक उसके जीवन में आ गया। उसका ताया, गांव से मिलने आया था। जब वह बाजार में से गुजर रहा था, तो उसे विचार आया कि विजय के लिए कोई उपहार ले चले।

वह बिसाती की दुकान पर खड़ा सोच रहा था कि कौन सा खिलौना खरीदा जाए। यकायक उसके मस्तिष्क में भाई के ताजा पत्र के ये शब्द उभर आए कि विजय अब दीवार के सहारे खड़ा होने लगा है और आशा है कि जल्दी चलना भी सीख जाएगा, और उसकी दृष्टि गडोलने पर जा पड़ी।

विजय ने ताया के इस उपहार का स्वागत किया। और उसने गडोलने को नन्हें हाथों में थाम कर दीवार का सहारा छोड़ दिया। शरीर का दबाव पड़ते ही पहिए हरकत में आए और गडोलना आगे चल पड़ा। विजय को भी उसके साथ आगे बढ़ना पड़ा, लेकिन सन्तुलन ठीक न रख सका, इसलिए लड़खड़ा कर गिर पड़ा। जाने गिरने में उसे क्या आनन्द आया कि वह खिलखिला कर हँस पड़ा और गडोलने को पकड़ कर दोबारा उठने का यत्न करने लगा।

उसने कई बार गडोलने के साथ चलने की कोशिश की कई बार सन्तुलन खोया, गिरा और फिर उठ कर चलने लगा। उसके असफल प्रयत्न पर माता-पिता दोनों प्रसन्न होते थे और दोबारा यत्न करने के लिए उसे प्रोत्साहित करते थे, हर तरह बढ़ावा देते थे। कई दिनों के सतत संघर्ष के बाद विजय को सफलता प्राप्त हुई। उसे सन्तुलन कायम करने का ढँग आ गया और वह गडोलने के साथ आगे बढ़ने लगा। अब भी उसका पांव जम कर नहीं पड़ता था और गिरने

का खतरा रहता था। लेकिन उसे खेल में आनन्द आता था और वह साहस और हिम्मत से कदम आगे बढ़ाता था।

माँ, बड़े ही स्नेह और चाव से उसे ताकती रहती, गति-विधी का निरीक्षण करती और अपने लाल के बढ़ते हुए कदम को बहुत ध्यान से देखती। एक दिन विजय ने गडोलने को उठा कर दहलीज के पार रखा, वह लड़खड़ाया ओर गिरते २ सम्भल गया। ''शाबाश !''

माँ ने उसके साहस को दाद दी और जब पति दफ्तर से लौटकर आया तो बेटे के इस नई मुहिम सर करने की दास्तान बड़े ही चाव और प्यार के साथ उसे सुनाई और कहा कि विजय जब गडोलना छोड़ कर अपने आप चलना आरम्भ करेगा, तो मैं मुहल्ले भर में कलाकन्द बाटूँगी।

कलाकन्द बाटूँगी। अर्थात् सारे संसार में घोषित करुँगी कि मेरा विजय पँगला नहीं है, वह चल सकता है, दौड़ सकता है और मैंने सर्वांग, सम्पूर्ण जिन्दगी को जन्म दिया है।

जिन्दगी जो कदम एक बार आगे बढ़ा लेती है, फिर उसे पीछे नहीं हटाती। विजय अब गडोलने के साथ घूमता था। उसे उठा कर इधर-उधर पटकता था, जब कोई मोड़ घूमता था, तो मुस्कराता था। उसने फिर कभी दीवार का सहारा लेकर खड़ा होने की इच्छा प्रकट नहीं की, जैसे उसे खड़ा रहने से—जीवन की जड़ता से नफ़रत हो। वह घूमना चाहता था, दौड़ना चाहता था, और इस घूमने दौड़ने में गडोलना उसके काम आता था। उसे इधर-उधर पटकने में आनन्द आता था।

लेकिन एक दिन—एक दिन उसने गडोलने को बिल्कुल ही अलग फेंक दिया और वह खुद अपने हीं पाँव पर आगे बढ़ गया। माँ यह दृश्य देखकर उल्लास से भर गई। खिल उठी। और उसने पड़ोसिन को पुकारा:—

"बहन जी ! बहन जी ! ! देखो विजय चल रहा है ।"

लेकिन बहिन जी के आते २ विजय फिर गिर पड़ा वह ज्यादा देर तक अपने आप को न संभाल सका । मां ने गडोलना आगे बढ़ाया। वह उसे लेकर फिर उठा, फिर चलने लगा, लेकिन वह सहारे से मुक्त हो जाना चाहता था । उसने अपने पाँव पर चल कर देख लिया था । सहारा लेकर चलने की अपेक्षा उसे बिना सहारा चलना अधिक अच्छा लगा था, जिन्दगी जो कदम आगे बढ़ा चुकी थी, उसे पीछे नहीं हटाना चाहती थी । विजय ने फिर गडोलना छोड़ दिया और वह फिर अपने ही पांव पर चलने लगा ।

"बधाई हो, तुम्हें । ला, मंगवा मिठाई ।"

"वह दफ्तर से आयें, तो तुरन्त मंगवाती हूँ ।"

दूसरे दिन कलाकन्द बाँटकर माता पिता ने जीवन की इस विजय का जश्न मनाया और जश्न मनाने में मुहल्ले वाले भी शरीक थे । माँ जिस के हाथ पर कलाकन्द रखती थी, वह बधाई देता था और माँ का मन हर्ष और गर्व से नाच उठता था ।

एक दो दिन में गडोलने की आवश्यकता ही न रह गई । विजय अब बिना किसी सहारे के भाग दौड़ सकता था ।

गडोलना एक महीने से खूटी पर लटक रहा था । विजय को कभी उसका ख्याल तक नहीं आया । आज अचानक दृष्टि जा पड़ी तो वह उसे उतार देने के लिए जिद करने लगा । माँ ने गडोलना उतार दिया और कहा—"शैतान !"

शैतान ने गर्वोन्मुख चंचलता से गडोलने को थाम लिया । उसे एक कदम आगे धकेला और एक अजीब बेपरवाही से एक ओर पटक कर आप ही आप हंसने लगा ।

बाप

वह अपने नौ-दस साल के बेटे को बाज़ार में खड़ा पीट रहा था और गालियाँ दे रहा था—'हरामज़ादे, मैं तुझे कहां-कहां ढूँढ़ता फिरूँ ?'

वह बाप था और उसे अपने बेटे को पीटने और गालियाँ देने का अधिकार प्राप्त था। लोग सब कुछ देखते हुए चुपचाप आ-जा रहे थे। कोई उसका हाथ नहीं रोकता था, कोई उसके रवैये पर एतराज़ नहीं कर सकता था।

एतराज़ कोई क्यों करे ? वह बाप था। बाप, बेटे का दुश्मन तो नहीं होता। फिर उसका दिमाग भी ख़राब नहीं। वह अगर बेटे को पीट रहा था तो उसके भले के लिए पीट रहा था, उसे आवारा बनने से रोक रहा था। ताड़ना कर रहा था कि वह उसकी आज्ञा का पालन करे और दुनिया में रहने के चलन सीखे।

लेकिन कैलाश को न जाने क्यों यह सब कुछ बुरा लग रहा था। वह सामने खिड़की में बैठा लड़के को पिटता देखता रहा, उसका रोना सुनता रहा। इस रोने में करुणाजनक फ़रियाद छिपी थी, जो उसके हृदय में घुसी जा रही थी। जी में आता था कि दौड़ कर नीचे उतरे और उसके बाप का हाथ पकड़ कर कहे—'राक्षस' तुम यह क्या कर रहे हो ! तुम्हें मालुम नहीं कि तुम बड़प्पन के घमन्ड में बच्चे का व्यक्तित्व कुचल रहे हो। उसे सदा के लिए फलने-फूलने से रोक रहे हो।'

'साले, हरामज़ादे ! बोलता क्यों नहीं। बता मैं तुझे कहाँ-

कहाँ ढूंढ़ता फिरूँ ?'—बाप ने बेटे को फिर थप्पड़ मारा और गाली भी दी ।

यह उसकी पुरानी आदत थी । वह उसे अक्सर पीटता था, और जब पीटने लगता था तो खूब पीटता था । उसके आग भरे चेहरे को देख कर लड़के की बोटी-बोटी काँप उठती थी, जैसे बकरा कसाई के छुरे तले तड़प रहा हो ।

बाप पीटता था, बेटा रोता और दुनिया तमाशा देखती थी । कैलाश को यों महसूस होता था, जैसे दुनिया को तमाशा दिखाने के लिए ही यह खेल खेला जा रहा हो । बाप के जिस व्यक्तित्व की दूसरे उपेक्षा करते थे, बेटा भी क्यों करे ? वह क्यों उसका कहना न माने ?

उसे बाप का कहना मानना पड़ेगा । जिस तरह वह कहता है उसे करना पड़ेगा । न मानेगा तो मार खाएगा । कोई क्यों बीच में टाँग अड़ाये ?

और फिर वह उसका दुश्मन तो नहीं, बाप है, उसके भले की बात सोचता है ।

कैलाश को इस जगह आए दो महीनें से अधिक समय नहीं हुआ । पड़ोस में सभी ग़रीब लोग बसते हैं । मेहनत-मजूरी कर के पेट पालते हैं । अधिकांश अंडे और मछलियां बेचते हैं । इससे अधिक उनके बारे में वह कुछ नहीं जानता । लेकिन इस आदमी से और उस के लड़के से वह भलि-भांति परिचित हो चुका है । वह उन्हें पहले ही दिन जान गया था, क्योंकि पहले ही दिन बाप ने बेटे को पीटा था, और इस तरह पीटा था जैसे वह उससे कोई बदला ले रहा हो, जैसे वह बेटे को पीट कर अपनी किसी असंतुष्ट भावना को सान्त्वना दे रहा हो ।

'क्यों पीटते हो, बेचारे को ?' लड़के को पिटते हुए देख कर

कैलाश बोला ।

'बेचारा नहीं । बदमाश है, हरामज़ादा ।' बाप ने चिढ़ कर कहा—'मैं लाख समझाता हूँ, एक नहीं सुनता ।'

'फिर भी ऐसे तो नहीं मारा करते । तुम नहीं जानते इस मार से क्या नुकसान होता है ।'

'मैं सब कुछ जानता हूँ'—वह तुनक कर बोला— 'मैंने इसे पैदा किया है । इसे खिलाता-पिलाता हूँ । अगर कुछ कहता हूँ, इसीके भले के लिए । मैं इसका बाप हूँ, दुश्मन नहीं ।'

और फिर उसने तीन-चार चपत रसीद किए और गालियाँ दीं ।

कैलाश मन ही मन कुढ़ कर रह गया । उसने मानवता के नाते एक बात कही । लेकिन बाप ने हाथ रोकने के बजाय बेटे को और पीटना शुरू कर दिया । कोई दूसरा आदमी उसे क्या समझाये ? क्या वह इतना बड़ा होकर भी कुछ नहीं जानता । बेटे के हिताहित को नहीं समझता ? एक अपरिचित क्यों कह रहा है—'तुम नहीं जानते इस मार से क्या नुकसान होगा ?'

इसके बाद कैलाश यह दृश्य अक्सर देखा करता है । बाप पीटता है, बेटा रोता है । उसके रोने में करुणाजनक फ़रियाद चीखती रहती है । लेकिन कैलाश को टोकने का साहस नहीं पड़ता । चुप रहने में ही उसे अपनी भलाई मालूम होती है ।

हां, लड़के को पिटते देख कर उसे अपना अतीत स्मरण हो आता है । अतीत जो ऊसर और सुनसान रेगिस्तान के सदृश्य दृष्टि-सीमा में फैला हुआ है । जिसमें गर्म रेत है, तपती हुई लू है, वनस्पति नाम मात्र को नहीं ।

उसका अतीत कुछ ऐसा ही था—सूखा और निरानन्द ! उसकी मनहूस परछाईं वर्तमान और भविष्य पर भी पड़ती मालूम होती थी ।

कैलाश का बाप भी उसे इसी निर्दयता से पीटा करता था । पीटता और रोने से मना करता था । बस, पशु की तरह पिटते चले

जाओ, और वह न रोये, न चिल्लाये, न फ़रियाद करे ।

बाप को पीटने में जैसे मजा आता हो । श्री-गणेश बिल्कुल ही तुच्छ और साधारण घटना से होता था । पर बाप झुंझला-झुँझला कर पीटता और पीटना तब तक जारी रखता' जब तक कैलाश रोना चिल्लाना बन्द न कर देता । वह चपत और घूंसों की मार के नीचे सुबकियाँ भरते-भरते जब तक ख़ामोश न हो जाता ।

ज़रा-ज़रा सी बातों के लिए इस लड़के को पीटते देख कर कैलाश को अपने जीवन की ऐसी ही घटनाएं याद आ जाती थीं । इस समय उसे एक घटना याद आ रही थी ।

बाप ने कैलाश को किसी काम से भेजा था । रास्ते में कुछ समवयस्क लड़के आँख-मिचौनी खेल रहे थे । उसका भी जी ललचाया और खेलने लगा । खेल में व्यस्त हो कर कामधाम सब भूल गया । थोड़ी देर बाद जब आँखे बन्द किये अपनी मीर दे रहा था अकस्मात किसी ने आ दबोचा और पीटना शुरू कर दिया ।

बाप प्रतिक्षा करते करते थक गया था और अब वह स्वयं घर की ओर जा रहा था । कैलाश को खेलते हुए देखकर आपे से बाहर हो गया । क्रोधित तो वह था ही, क्योंकि वह सारा रास्ता ढूँढ़ता आया था कि कैलाश कहीं दीख पड़े तो बेटा की खाल उतार ले । यह क्या, बाप उधर कुढ़-कुढ़ कर खून सुखा रहा है और बेटा इधर मस्त होकर खेल रहा है । उसे बाप की जरा भी परवाह नहीं ।

इसलिए कैलाश को वह ताबड़-तोड़ पीटने लगा और बोला—'हरामजादे, तुझे खेलना, खाना याद रहता है और...'

कैलाश रोने लगा तो बाप का क्रोध और भी बढ़ गया था । वह मार रहा था और रोने से मना कर रहा था । लेकिन जब देखा कि वह यों चुप नहीं होगा तो उसे मिट्टी के एक ढेर पर गिरा लिया और मुँह में ढेला ठूंस-ठूंस कर चपत जमाने लगा था—'रो, अब रो, मैं देखता हूँ तू कैसे रोता है ।'

बाप पीटता रहा और कैलाश बिलबिलाता रहा !

जिन लोगों ने कैलाश को पिटते देखा उन्होंने कानो पर हाथ धर लिए। पड़ोस में कई रोज तक इस आर की चर्चा रही। उसका बड़ा भाई कुन्दन लाल घटना-स्थल पर मौजूद नहीं था, पर सारी बात सुन कर बोला—'यह बाप तो है नहीं, कसाई है !'

लहजे में तलखी नहीं थी, रोष नहीं था। पर कहने के बाद कुन्दन लाल ने जो गम्भीर और शान्त मुख-मुद्रा धारण किए था वह कैलाश को अब तक याद है। भाई की वह शक्ल उसे कभी नहीं भूलती, ये शब्द भी कभी नहीं भूलते। इसमें एक ऐसी विषाद, ऐसी तड़प और फरियाद भरी हुई है, जो शब्द याद आते ही उसके चारों तरफ गूंज उठते हैं। भाई ने वर्षों के अनुभव का निचोड़, अपने हृदय की वेदना इन शब्दों में पिरो कर रख दी थी।

कुन्दन लाल अब जवान हो गया था। बाप अब उसे नहीं पीटता था। पीटना चाहे तो भी नहीं पीट लकता था। इस बात का उसे अनुभव हो चुका था। क्योंकि वह ढाई साल पहले, जब कुन्दन लाल ने लड़कपन से गुजर कर जवानी की ड्योढ़ी पर पग रखा था, तो एक दिन संध्या समय बाप किसी कारण वश क्रुद्ध हो गया और कुन्दन लाल पर हाथ उठाया। पर कुन्दन लाल पिटने के लिए तैयार नहीं था। वह अपने नौजवान मित्रों के साथ घूम कर लौटा था और उसे दुकान पर पहुँचने में देर हो गई थी। इसी देर के कारण वह कई बार पिट चुका था। पर आज उसने पहले से ही सोच लिया था कि चुपचाप पिटेगा नहीं। इस लिए मुकाबिले पर डट गया। करीब एक हुक्का पड़ा था, लपक कर नेचा निकाल लिया और बोला—'आ मार देखूँ, तू कैसे मारता है ?'

बाप ने बेटे को बिखरते देख कर हाथ खींच लिया और शान्त भाव से बादल की ओर देखने लगा। दिन रात में परिवर्तन हो रहा था।

कैलाश भी वहीं मौजूद था । बाप का हाथ उठते देख कर भय से काँप गया था । जब कुन्दन लाल को मुकाबिला के लिए तैयार देखा तो उसकी सहानुभूति भाई के साथ थी । बाप को परजित देख कर उसने इतमीनान की साँस ली, जैसे उसके सिर से ग्रह टल गया हो, जैसे उसने अपने पराक्रम से ही मैदान मार लिया हो ।

उसके बाद कुन्दनलाल कभी नहीं पिटा । इसीलिए कैलाश ने सोचा बाप उसे अब कभी नहीं पीटेगा । मगर यह बात गलत साबित हुई । जहाँ तक उसे पीटने का सवाल था बाप पहले से भी अधिक पीटता था क्यों कि जो गुस्सा कुन्दन लाल पर उतार लेता था वह भी अब कैलाश पर उतरता था ।

उसका एक मँझला भाई रोशन लाल भी था जो आठ-नौ साल की अवस्था में ननिहाल चला गया । चार पांच साल तक वहीं रहा । फिर एक दिन मामू के साथ शहर चला गया । और वहाँ एक बिसाती की दुकान पर नौकर हो गया ।

कैलाश और इस मँझले भाई में पटती नहीं थी । क्योंकि बड़ा भाई मँझले भाई को और मँझला भाई कैलाश को मारा करता था । इसलिए मँझले भाई का घर से दूर रहना कैलाश के लिए एक तरह से अच्छा ही हुआ । बाप को भी इसकी परवाह नहीं थी ।

हाँ, माँ पिता के व्यवहार से तंग आकर कह दिया करती थी—'तुम्हें जरा दया नहीं आती । कोई अपने बच्चों को इस तरह भी मारता है । एक तो घर से भाग गया और दूध के दाँत टूटे नहीं कि दूसरों का नौकर हो गया !'

बाप चिढ़ कर जली कटी सुनाता और कभी-कभी उसे भी पीटता ।

मां को एक ही बात बार-बार दोहराते सुन कर कैलाश को मालूम हो गया कि दूसरों की नौकरी करना बुरा है । पर वह सोचता कि नौकरी करना बाप की मार से तो बुरा नहीं होगा, वरना उसका मँझला भाई अब तक घर लौट आता । इसलिए जब कभी उसे मार

पडती, वह एकांत में बैठ कर सोचता कि घर से भाग जाये और शहर में जा कर नौकरी कर ले । लेकिन जब परों में उड़ने का बल न हो पक्षी घोंसले को कैसे छोड़ सकता है ।

बड़ा और मँझला भाई, दोनों ही बाप के चंगुल से बाहर निकल चुके थे । उसकी बर्बरता का निशाना बनने के लिए सिर्फ कैलाश ही रह गया था । वह भी उसकी पकड़ से बाहर निकल जाने के लिए छटपटा रहा था ।

अभी उड़ने का सामर्थ नहीं था; उसने बड़े भाई की तरह उस दिन, जब जानवरों को कुएँ पर पानी पिलाया जा रहा था, उसने भी किया । पानी खींचते-खींचते बाप थक गया था । वह बाप की सहायता कर रहा था । बाप की साँस फूल गयी और वह क्रोध में उबलता हुआ बोला—'सालों का जरा भी सुख नहीं । इस अवस्था में भी आप ही मरना पड़ता है ।

बाप को गुस्से में देख कर कैलाश काँप उठा और वह अपने मार से बचने की बात सोचने लगा । भैंस पानी पी रही थी । कैलाश को अचल खड़ा देख कर बाप चिल्लाया—'देखता नहीं ? अन्धा है । तसले का पानी खतम हो गया । डोल उठा कर डालता क्यों नहीं !

कैलाश ने हड़बड़ा कर डोल उठाया पानी तसले में पड़ने के बजाय जमीन पर पड़ा ।

बाप को गुस्सा आना अनिवार्य था । वह पहले ही थक गया था—अब और पानी खींचना पड़ेगा । वह झुँझलाया हुआ बेटे पर लपका । पर कैलाश पिटने के लिए तैयार नहीं था—साथ काम भी करो और पिटते भी जाओ । उसके मन में विद्रोह का अंकुर फूट रहा था । लपक कर डोल की रस्सी उठाली और मुकाबला पर डट गया ।'

'हरामजादे अभी से मुकाबला करता है ?'

बाप गुस्से से पागल हो गया । उसने कैलाश को गर्दन से पकड़

कर, कुएँ की जगत पर पटक दिया और ताबड़तोड़ पीटने लगा। कैलाश चुपचाप पिटता रहा। हिले तो कुएँ में गिर पड़ने का भय था। उस दिन वह इतना पिटा कि उसकी बोटी-बोटी दर्द करने लगी, और नाक से खून बहने लगा। शायद वह इतना पहले कभी नहीं पिटा था।

ओर जले पर नमक यह कि किसी ने भी उसके साथ सहानभूति प्रकट नहीं की। जो सुनता था वह उसी पर लानत भेजता था——

'नालायक है ! पाजी है। गधा है। बाप का मुकाबला करता है।'

जब कभी उसे यह घटना स्मरण हो आती है तो वह सोचने लगता है कि क्या सचमुच पागलपन था ? उसे बाप का मकाबला नहीं करना चाहिए।

पर उसे इस हरकत में कोई बुराई नजर नहीं आती। आखिर कुन्दनलाल ने भी मुकाबला किया था। उसकी किसी को कानों कान खबर भी नहीं हुई। बाप भी बेटे की धृष्टता को चुपचाप पी गया पर कैलाश पिटता रहा और लोगों ने उसे नालायक, पाजी और गधा भी कहा।

क्यों असफल और असामयिक चेष्टा को दुनिया पाजी कहती है ? हर आदमी हरएक काम समझ सोच कर ही तो नहीं करता। परिस्थितियों का षड़यंत्र उसे समय के प्रतिकूल कार्य करके पिट जाने और पराजित होने पर मजबूर करता है। पर वह इसे पराजय नहीं मानता।

कैलाश अब तो इस घटना को याद कर खिन्न होने के बजाय एक प्रकार का संतोष अनुभव करता है। क्योंकि उसने अन्याय, दमन और अत्याचार का विरोध किया था। और यही वजह है कि आज भी वह उन बुराइयों का विरोध करते नहीं हिचकता, जिससे दुनिया सँकुचित और आत्महीन बन जाती है।

इसी से तो उसने अपने बेटे को पीटते देख कर इस आदमी से कहा था—

'तुम नहीं जानते कि इस मार से क्या नुकसान होगा ?'

लेकिन इससे लड़के का हित होने के बजाय अहित हुआ था, बाप ने उसे और भी पीटा था। और यह घटना हर रोज दोहराई जाती थी। बाप को तनिक बहाना चाहिए, झट पीटने को आमादा हो जाता है। जैसे बेटे को पीट लेने से बाप के मान-मर्यादा की रक्षा हो जाती है।

जब बाप बेटे को पीटता है तो कैलाश इस ओर से उदासीन हो कर सामने मैदान की ओर देखने लगता है।

जिस मकान में वह रहता है, उसके सामने खुला मैदान है, जिसमें लोग सुबह-शाम चहल कदमी करते हैं। बाकी दिन-रात पड़े ऊंघते रहते हैं। घाँस-फूस का नाम तक नहीं ! सर्वथा बंजर और बेकार पड़ा हुआ है। सिर्फ चन्द एक वृक्ष खड़े हैं। वृक्ष भी सड़क के किनारे अधिकाँश हैं। इनमें एक पीपल का पेड़, जो घना और फैला हुआ है, उसके निकट शीशम का वृक्ष है, जो बायीं ओर को झुक गया है। दायीं ओर—जिधर पीपल का पेड़ है—कोई टहनी फूटी भी तो बढ़ नहीं सकी। शीशम का वृक्ष अधूरा, अपूर्ण और अनाथ सा दीख पड़ता है।

एक नीम का भी वृक्ष है, जो इन वृक्षों से पन्द्रह-बीस गज पर मैदान के बीचों-बीच एक दम एकांत में खड़ा है। उसकी टहनियाँ चारों ओर छतरी के सदृश्य फैली हुई हैं। उसमें झुकाव का नाम तक नहीं। अलग और एकान्त होते हुए भी सुन्दर और आकर्षक हैं, जैसे मैदान के विस्तार पर मुस्करा रहा हो। वृक्ष का भी एक व्यक्तित्व होता है।

मैदान के दूसरे छोर पर भी वृक्ष है। उसके परे सड़क है। फिर मैदान है। और फिर लालकिला नजर आता है। लाल किला

जिसे शाहजहाँ ने बनवाया था । कैलाश की कल्पना इतिहास के पन्ने उलटने लगी—हाँ, यह किला शाहजहां ने बनवाया था । जिसे औरँगज़ेब— उसके अपने ही बेटे ने गिरफ्तार कर लिया था ।

कैलाश ने बोझिल सिर कुर्सी की पुश्त पर रख दिया और अध-खुली आँखों से बहुत दूर अतीत के धुन्ध में देखने लगा ।

कल्पना-पट पर उस युग का चित्र उभर आया, जहाँ से कुटुम्ब का आरम्भ हुआ था । जहाँ एक मोटे होठों वाला विशालकाय बूढ़ा इस कुटुम्ब का शासन करता नजर आता है । वह बेटों को उस वक्त तक सिर उठाने की इजाजत नहीं देता, जब तक कि वे अपनी नई शक्ति से उसकी बर्बर शक्ति को कुचल नहीं देते ।

इन्सान उस समय तक अत्याचार सहन करता है, जब तक अत्या-चार का विरोध कर सकना उसके बस की बात न हो ।

कैलाश ने भी वैसा ही कुछ किया था । यह लड़का भी वैसा ही कुछ करेगा ।

विचार फिर उसी धार पर आ गए । कैलाश जिस घटना से उदासीन हो जाना चाहता था वही विचारणीय विषय बन गया । वह लड़के को पिटते देख रहा था और सोच रहा था कि वह एक न एक दिन अवश्य बाप का मुकाबला करेगा । इन सारी गालियों और घूंसों के लिए बाप से बदला लेगा । सम्भव है मुकाबिले की नौबत न आए । बेटा नौजवान होने से पहले ही घर से भाग जाए—बाप की परछाई से दूर किसी अज्ञात स्थान की ओर ।

विचारों ने फिर अतीत की ओर पलटा खाया । कैलाश खुद दस-ग्यारह साल की आयु में घर से भाग गया था । प्रतिकूल परिस्थ-तियों से लड़ता झगड़ता और मेहनत मजदूरी करके जीवन बिताता रहा । छोटी सी अवस्था में बहुत सी मुसीबतें सहना, निराश रहना पड़ा । लोगों की अवज्ञा और तिरस्कार पूर्ण दृष्टि हृदय को छेदती रही । ये सब कुछ होते हुए भी उसने घर से दूर-दूर रहना ही

उचित समझा ।

इस आवारगी के जामने में उसके पिता का निधन हो गया । उसे जरा भी दुःख न हुआ । आँख से आँसू तक न टपका । वह शोक प्रकट करने घर आया जरूर, पर दूसरे ही दिन फिर वापिस लौट गया ।

माँ, अब तक इस बात पर खेद प्रकट करती है कि कैलाश बाप की मृत्यु पर रोया क्यों नहीं और वह दुःखित होकर कह देती है—'जो बाप की मौत पर नहीं रोया, उसके दिल में मेरे लिए ममता कहां होगी ?

'क्यों रोएँ माँ ? हमने कौन सुख देखा है किसी का !'

कैलाश उत्तर देता है और अतीत की भयानक स्मृति से उसका चेहरा कठोर पड़ जाता है ।

यह एक कटु सत्य है जिसे माँ भी अनुभव करती है, लेकिन उसे यह गवारा नहीं कि बेटा माँ-बाप का एहसान बिल्कुल ही भुला दे और खुले तौर पर कहे कि माँ-बाप ने उनके लिए कुछ किया ही नहीं । इसलिए वह आवाज में आद्रता और प्रेम भर कर पति के लिए सफाई पेश करती है—'बेटा, सुख दुःख तो किस्मत की बात है । उसका क्या दोष था ? जब हाथ में होता था तो तुम्हें ही खिला पिला कर खुश होता था । कहीं बाहर तो फेंक नहीं आता था ।'

माँ की यह दलील सुन कर कैलाश का कठोर चेहरा किसी तरह नरम पड़ जाता ।

वह उम्र भर बाप से पिटता जरूर रहा था । इसके बावजूद उसके मन में बाप के प्रति श्रद्धा और सम्मान भरा हुआ था । वह जानता था कि बाप उन्हें अच्छा खिलाने की कामना किया करता था परन्तु उसकी अभिलाषा कभी पूरी नहीं हुई । उसे आजीवन असफल-ताओं और निर्धनता का मुँह देखना पड़ा, जिससे जीवन कड़ुवा और निरानन्द हो गया । बेटों को जीवन की आवश्यक वस्तुओं से वंचित

देख कर उसे अपने आप पर क्रोध आता था । वह उन्हें पीटता था, पीट कर पछताता था । वह किसी प्रकार अपने मन की कटुता को भूल जाना चाहता था । परिस्थितियों ने उसे कुचल रखा था । वह विवश और लाचार था ।

कैलाश बाप की बर्बरता को, अपने बचपन को—समस्त अतीत को भूल जाने का भरसक प्रयत्न करता था । वह इस लड़के के बाप को भी क्षमा योग्य पात्र समझता था । उस पर क्रोध करने और लड़के का रोना सुनने के बजाय, परे मैदान की और वृक्षों और मैदान की ओर देखना पसन्द करता था । वातावरण से एकदम उदासीन हो जाने की चेष्टा करता था ।

पर आज—आज फिर उसे बाप का बेटे को पीटना अत्यन्त नागवार गुजर रहा था । बाप को पीटने और बेटे को पिटते देख कर वह झुंझला उठा ।

'ऊँह ! क्या कर रहे हो ?'

वह आप ही आप चिल्लाया उसकी आवाज किसी ने सुनी नहीं, हवा में मिल कर वायुमण्डल में खो गई । वायु में उड़ने वाले प्रमाणुओं की तरह उपेक्षित और निरर्थक हो कर रह गई ।

लेकिन वह झुँझलाता और दांत किटकिटाता रहा । आज वह मैदान और वृक्षों को नहीं देख रहा था । उसे लड़के के बाप पर गुस्सा आ रहा था । वह मजबूरियों को समझते हुए भी उसे क्षमा नहीं कर सकता था । उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं कि अपनी किसी असन्तुष्ट भावना की वजह बेटे का जीवन नष्ट करदे । लड़के का नव-जीवन उसके बूढ़े और असफल जीवन से कहीं बेहतर है । मान और स्नेह का अधिकारी है ।

वह सोचने लगा कि इस असाधारण क्रोध का कारण क्या है ? वातावरण से उदासीन होने की योग्यता कहाँ चली गयी ?

कल वह डाक्टर अब्बास के साथ नए ढँग का स्कूल देखने गया

था, जो दिल्ली से पांच-छ: मील पर नहर के किनारे बसा हुआ है ।

अब्बास का लड़का सुहेल भी वहीं पर शिक्षा पाता है, उम्र तो तेरह-चौदह साल की है पर बड़ा चतुर, मिलनसार और अनुभवी है ।

डाक्टर, मास्टर और दूसरे लोगों के साथ बड़े तपाक से भिलता है । दोस्तों की तरह हाथ मिलाता है । चिड़ियों की भांति चहक २ कर बातें करता है ।

उसने कैलाश को स्कूल दिखाया—यह लायब्रेरी है । आप हैं मास्टर उस्मान, इस लायब्रेरी के इन्चार्ज । आइए उस्मान साहब, आपसे मुलाकात कीजिए...फिर वह आगे बढ़ा—देखिए यह बच्चों का मैगज़ीन है । इसे वे खुद निकालते हैं । सारे मज़बून खुद लिखते हैं । खुद उन्हें तरतीब देते हैं ।

सुहेल दिखा रहा था और कैलाश देख कर विस्मित हो रहा था । सब वस्तुओं से अधिक दिलचस्प सुहेल खुद था जैसे-जैसे वे आगे बढ़ रहे थे, कैलाश पर उसका व्यक्तित्व प्रकट हो रहा था ।

'अकरम साहब !,—सुहेल ने मार्ग में एक नौजवान को पुकारा । वह ठहर गया, तो बोला—'अब्बास आए हैं, उनसे मिल लीजिए ।'

'कहाँ हैं ?'

'वहाँ बैठे हैं, हेडमास्टर के पास ।'

अकरम चले गए तो सुहेल ने बताया कि वे साईन्स के अध्यापक हैं । जब डाक्टर और कैलाश मोटर से उतरे थे तो सुहेल ने छूटते ही पूछा था—

'अब्बास ! मेरी वे किताबें नहीं लाए ।'

बाप को अब्बास कहना उसके लिए साधारण है । बेटे की जबान से बाप का नाम सुन कर कैलाश चकित रह गया । उसके लिए यह बिल्कुल अनोखी बात थी । क्योंकि उसके दिल पर अब तक मातृमान, पितृमान और अचार्यमान का उपदेश छाया हुआ था और वह उपदेश उसकी आत्मा में इतना गहरा उतर गया था कि सजग और सबल

प्रयत्न के बावजूद भी नहीं निकल रहा था ।

उसे सुहेल की बातें बहुत पसन्द आयीं । उसका स्वर निर्मल, निरीह और सुदृढ़ था । उसके हाव-भाव में जंगल के मुक्त हिरणों की स्वतन्त्रता और स्वच्छंदता थी । बाप को अब्बास कहते हुए वह बहुत मालूम होता था । बाप उसके लिए हौवा और अलौकिक व्यक्ति नहीं । इन्सान था—सहचर और मित्र ।

जब वे लौट रहे थे तो कैलाश रास्ते भर अपने लड़कपन की सुहेल के लड़कपन से तुलना करता रहा । सोचते-सोचते उससे न रहा गया, बोला—

'डाक्टर साहब ! जी में आता है कि इस जिन्दगी को मिटा कर फिर बनाऊँ ।'

'ऐसा अब सिर्फ़ तुम सोच सकते हो, कर तो नहीं सकते ।' डाक्टर अब्बास ने उत्तर दिया ।

सच, वह महज़ सोच ही सकता था । जीवत जो कुछ बन चुका था उसे मिटाना या फिर से बनाना उसके अथवा किसी के भी बस का रोग नहीं था । अतीत, अच्छा या बुरा, वर्तमान और भविष्य से चिपका रहता है, उससे पिण्ड छुड़ाना सम्भव नहीं ।

कैलाश, जो बिना बात के चिढ़ जाता था, कड़वा बोलता था इसका कारण यही था कि उसे बचपन में निर्दयता से पीटा गया था, कुचला गया था । उसे अपना व्यक्तित्व अपूर्ण और अतृप्त दिखाई देता था । अब जब कि उसने अनुभव से बहुत कुछ सीख लिया था, शिक्षित और सजग हो कर अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर रहा था, सफलता के सुन्दर स्वप्नों से भरा हुआ था; उसे अतीत से पिंड छुटाना कठिन हो रहा था । वह अपनी आत्मा में कटुता की जगह मधुरता नहीं भर सकता था । कितनी ही त्रुटियाँ जीवन का अंग बन गई मालूम होती थीं । कोशिश के बावजूद भी उन्हें नहीं निकाल सका था । यही कारण है कि उसे डाक्टर के शब्द बार-बार याद आ रहे थे—सोच ही

सकते हो, कुछ कर तो नहीं सकते ।

जब वह सब कुछ यह सोच रहा था तो उसने देखा कि बाप फिर बेटे को पीट रहा है । उसके जी में आया कि एकदम दौड़ कर नीचे जाए और बाप का हाथ पकड़ कर कहे—

'तुम यह क्या कर रहे हो ? बड़प्पन के घमण्ड में बच्चे की आत्मा को कुचल रहे हो ।'

पर नीचे जाने का साहस नहीं हुआ क्योंकि वह जानता है कि बाप हाथ रोकने के बजाय और क्रोध में भर जाएगा और लड़के को अधिक पीटेगा ।

मानव और दानव

फिसाद खत्म होने के बाद जब मैं अपने घर पूर्वी पंजाब में लौटा तो जिस किसी के पास जा बैठता, वही खैर-खैरियत की दो चार रस्मी बातें कहने के बाद हत्याकांड, मारपीट और लूट-खसोट की दास्ताँ सुनाना शुरु कर देता, जो परियों की कहानी की तरह आश्चर्यजनक घटनाओं पर निर्भर होती। और ताज्जुब यह है कि ये कहानियां अलिफलैला की कहानियों की तरह मनगढ़न्त नहीं, सच्ची थीं। लोगों ने अपनी आँखों के सामने उन्हें घटते देखा था।

मैं जो कहानी अब लिखने जा रहा हूँ वह मेरे मित्र जसवन्त ने मुझे सुनायी थी। दर-असल जिस तरह और लोगों ने दंगे के सम्बन्ध में बातें सुनायीं थीं, उसने भी निजी अनुभव की एक घटना बयान की थी। घटना करुणाजनक और मर्मस्पर्शी तो थी ही, इसके अतिरिक्त कहने का ढंग इतना सरल था कि उसका एक-एक शब्द मेरे मस्तिष्क में अंकित होकर रह गया। उस समय न जसवन्त को यह मालूम था कि यह कहानी लिखी जाएगी और न मेरा ही ऐसा विचार था। मगर अब, जब मैं कुछ लिखने की सोचता हूं तो झट जसवन्त का सुन्दर गोल चेहरा और यह घटना दिमाग में उभर आती है और मैं इसे दोह-राय बिना नहीं रह सकता।

जब मैं जसवन्त से मिलने गया तो वह अपनी छोटी सी दूकान में बैठा जिल्दें बाँध रहा था। मुझे देखते ही दौड़कर हाथ मिलाया और प्रेम से अपने पास बैठा लिया। दो मिनट तक हम दोनों खामोश बैठे रहे, जैसे पंजाब में जो कुछ हुआ है, उस पर अफ़सोस कर रहे हों। आखिर बात चल पड़ी। जसवन्त ने कहना शुरु किया:—

"मैं और मेरा साथी महता सिंह लोंगोवाल से लौट रहे थे। जब

हम महलां के अड्डे से टांगे पर बैठे तो झाड़ियों से निकल कर दो औरतें वहां आ गईं। वे बहुत घबराई हुई थीं। चेहरे उतरे हुए और पाँव सूजे हुए थे। आँखों में भय और निराशा भरी थी। मैं क्या बताऊँ कामरेड, उनकी हालत बयान करना बहुत मुश्किल है। उनमें एक जवान थी और दूसरी बूढ़ी थी।

"बीबी, तुम कहां से आई हो ?" मैंने पूछा।—

"ओथों ई !" बूढ़ी औरत के मुँह से निकला और वह सूनी आंखों से इधर-उधर देखने लगी। मुझे उन आंखों में देखने से डर आता था।

"मालूम होता है यह इस्के से आई हैं।" मैंने अपने साथी महता सिंह से कहा और जवान औरत ने जो काठ की मूर्ति की तरह चुप खड़ी थी, सिर हिला कर मेरी बात का समर्थन किया।

"बीबी, घबराओ नहीं, यहाँ तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।" मैंने उस औरत से कहा। उसने मेरी ओर देखा और देखती ही रही जैसे उसे विश्वास न आ रहा हो कि उसे भी कोई बीबी कहने वाला है।

"आओ,तांगे में बैठ जाओ।" मैं फिर बोला।

"हमारे पास पैसे नहीं हैं।" दोनों ने धीमे स्वर में एक साथ कहा। मोहताजी और दीनता उनके चेहरों पर अंकित थी।

"किराया मैं दूंगा। तुम बैठ जाओ।"

उन्होंने एक दूसरी की ओर देखा और चुप खड़ी रहीं।

"हां, बैठ जाओ। हम तुम्हें कैम्प में छोड़ देंगे।" मैंने नीचे उतर कर कहा और पूछा—"भूख लगी हो तो खाने को लाऊँ ?"

"नहीं, पिछले गाँव में तुम्हारी ही तरह कोई भला आदमी मिल गया था। उसने हमें रोटी खिला दी है।" बुढ़िया ने कहा और वे दोनों तांगे में बैठ गयीं, इसके बाद मैं भी बैठ गया और कोचवान को टाँगा चलाने के लिए कहा।

"पैसे तुम दोगे न ?" उसने पूछा।

"क्यों नहीं ? अब कह दिया है तो जरूर दूँगा ।"

उसने शुक्र किया और घोड़ा चला दिया । वह बड़ी देर से सवारियों का इन्तज़ार कर रहा था । उन दिनों कौन सफर करता था ।

टाँगा चला तो औरतों ने सुख की साँस ली और उनकी जान में जान आई ।

डस्का मुसलमानों का गाँव था । जब दंगे शुरू हुए तो आस-पास के गाँवों के मुसलमान भी वहाँ जमा हो गए । वे कुछ दिनों तक तो आक्रमणकारियों से अपने आप को बचाते रहे । पर अब, मिलिटरी और आक्रमणकारी दोनों ही उन पर टूट पड़े । तब लोग धड़ाधड़ मर रहे थे, इधर उधर भाग रहे थे । ये औरतें भी वहाँ से प्राण बचाकर भागी थीं । रातों-रात पन्द्रह-बीस कोस का फासला तय किया था । खेतों और झाड़ियों में छिपती हुई आई थीं । कपड़े फट गए थे । पाँव काँटों और रोड़ों से ज़ख्मी हो गए थे । थककर बेसुध हो चुकी थीं । अब चलने की बिल्कुल सामर्थ्य नहीं थी । तांगा खड़ा देखा था पर चलने को कैसे कहतीं ? डर के मारे पास तक नहीं आयीं । झाड़ी में छिपी बैठी थीं और अब हमें देखकर बाहर निकली थीं ।

आदमी के मन में आशा तो आखिरी दम तक बनी रहती है ।

ताँगा अड्डे से डेढ़ मील आगे आया था कि सड़क की दायीं और एक आदमी खड़ा मिला । उसके कंधे पर भाला रखा था । लम्बा चौड़ा कद, लाल आँखे और काला स्याह रंग देख कर भय लगता था । परे, कुछ दूर फासले पर एक घोड़ी खड़ी थी, जिसकी लगाम बगल में दबाये एक दूसरा व्यक्ति घास पर लेटा हुआ था और बन्दूक उसके पास रखी थी ।

'ऐ ताँगे वाला ! ताँगे में कौन है ?' काले स्याह आदमी की मोटी और कड़ी आवाज़ जंगल में गूँज उठी और दोनों औरतें सहम गयीं ।

"हम हैं ।" मैंने सिर बाहर निकालकर शांत भाव से उत्तर दिया ।

"कोई शिकार तो नहीं ?"

"नहीं ।

उसने ताँगे में झाँककर नहीं देखा और हम आगे बढ़ गए । 'शिकार का शब्द मेरे दिल में खटकता रह गया । पर कुछ बोलना उचित नहीं था ! उस आदमी की शक्ल कितनी क्रूर और भयानक थी । एक तो रंग काला फिर साफा भी स्याह बाँध रखा था ।

टाँगा काफी दूर निकल आया, मगर दोनों औरतें अब तक सहमी हुई थीं । उनकी आँखों में भय अंकित था । जब हम ने आपस में बातचीत शुरू की तब उनका डर दूर हुआ । फिर भी वह रह-रहकर पीछे की ओर देख लेती थीं, कहीं वह भंयकर व्यक्ति और उसका साथी पीछा न कर रहे हों ।

उन्होंने तो पीछा नहीं किया । लेकिन जब हम खेड़ी के करीब पहुँचे तो पुली पर, ("पुली तो तुमने देख रखी है ?" जसवन्त ने पूछा 'हाँ, देखी है ।" मैंने उत्तर दिया)वहाँ दस-बारह आदमी इकट्ठे बैठे थे और राह चलते मुसलमानों को घेर-घेरकर मार रहे थे ।

"ताँगे में कौन है ?" उन्होंने टोका ।

"हम हैं ।" मैंने उत्तर दिया ।

'कोई ग़ैर तो नहीं ?"

"नहीं ।" मैं फिर बोला ।

एक बार यहाँ से भी जान बची । पर हम मुश्किल से तीन फर्लांग ही जा पाए थे कि उनमें से एक आदमी साईकिल पर सवार आ पहुँचा और आगे आकर ताँगा रोक लिया ।

"ये औरतें कौन हैं ? ये तो तुम्हारी नहीं, मुसलमान हैं" वह बोला और फिर लाल पीली आँखें दिखा कर टाँगे वाले से कहा—"इन्हें क्यों चढ़ाया है ?"

ताँगे वाला डर गया और मेरी तरफ इशारा करके कहा—"इन्होंने किराया दिया है ।"

"हाँ, मैंने किराया दिया है । इन्हें मैं ले जा रहा हूँ ।" मैंने दृढ़ता से कहा ।

"तुम क्यों तकलीफ़ कर रहे हो ?" उसने कहा और एक क्रूर और धूर्तता-पूर्ण मुस्कराहट उसके होठों पर आ गई । "इन्हें नीचे उतारो, हम सीधे पाकिस्तान भेज देंगे ।"

मैं नीचे उतर आया और बहस शुरू हो गई । उसका कहना था कि हम जुल्म नहीं करते, बदला ले रहे है, लेकिन मैंने उसे बताया कि औरतों, बच्चों और मासूम लोगों को मारना किसी तरह भी उचित नहीं । जब इन्होंने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा, तो इनकी हत्या को तुम बदला कैसे कहते हो ! वह निरुत्तर हो गया और कुछ पसीजता हुआ मालूम पड़ा ! शायद वह हमें जाने की इजाजत दे देता पर इतने में उसके साथी भी आ पहुँचे और वे औरतों को उतार देने के लिए जिद करने लगे । मैं जितना भी समझाता था वे उतना ही बिगड़ते थे ।

उनमें एक पतले-दुबले और कमजोर जिस्म का व्यक्ति भी था जो सिख भी नहीं था और जाट भी नहीं था । जितना वह पतला-दुबला था उतना ही विष अधिक घोल रहा था । चूँकि वह पीछे खड़ा था इसलिए पहले मैंने उसे नहीं देखा था । अब वह आगे आकर बोला "देखो भाई, इस तरह की बातें नहीं किया करते । इसी दया ने तो पहले हमारा बेड़ा गर्क किया है । पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को छोड़ा उसी का नतीजा आज हम भुगत रहे हैं ।" वह अपनी विद्वत्ता पर आप ही मुस्कराया और मुझे निरुत्तर समझकर फिलासफरों की तरह आगे कहा—"और फिर यह तो कोई दया भी नहीं है । ये औरतें अब जीकर क्या करेंगी ? इनके आदमी मारे गए । घर-बार उजड़ गए, रहने खाने का ठिकाना नहीं । ये मरों से भी बुरी है । आप इन्हें कहाँ-कहाँ उठाये फिरेंगे । उन्हें यहीं से पाकिस्तान भेजा जा रहा

है । भेजने दो ।

मुझे उस बौने और जलील आदमी की बातों पर क्रोध आया, जी में आता था कि उसके मुँह पर एक चपत रसीद करें और वह चकरा कर जमीन पर जा गिरे । लेकिन मैं जब्त करके धीरज से बोला—

"देखो लाला, बहुत बातें नहीं किया करते । ये सब बातें मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुमने कहाँ से सीखी हैं । तुम कहते हो न कि ये औरतें अब जीकर क्या करेंगी । जरा अपनी इन सूखी हड्डियों पर तो नजर डालो । इनमें से कोई आदमी अगर तुम्हें मुट्ठी में लेकर फेंक दे तो तुम सूखे आक की तरह टूट जाओ । तुम्हें अपनी इन हड्डियों से प्यार क्यों है ? तुम ही जीकर क्या करोगे ?"

उसकी ज़बान सूख गई और चेहरा फीका पड़ गया। बात सुन कर उन्हीं में से दो-तीन आदमी मुस्करा दिए । अब मेरी कुछ हिम्मत बँधी और मैं इन मुस्कराने वालों को जो सबसे तन्दरुस्त और मजबूत मालूम होते थे अलग ले गया, और कहा—

"मैं जानता हूँ कि आप लोग बहादुर हैं और हमेशा बहादुरी से काम करते हैं, पर औरतों और बच्चों को मारना बहादुरी नहीं । यों बिना मुकाबले किसी को मारना तो नीच और बुज़दिल आदमियों का काम है । तुम्हारी शान के खिलाफ है..."

मैं उनसे ये बातें कह रहा था कि वह साईकिल वाला व्यक्ति जिस ने आकर ताँगा रोका था, वहाँ आ गया और मुझे ध्यान से देख कर बोला—

"मैंने तुम्हें पहले भी कहीं देखा है। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"जसवन्त ।"

"ठीक-ठीक" मेरा नाम सुन कर वह झट से बोला, "हमारे गुरु-द्वारे में पिछले साल जो दीवान लगा था, तुम उसमें आए थे" और अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए उसने कहा, "मैंने इनका लेक्चर सुना है । बहुत अच्छा बोलते हैं । सारी बात समझा कर और खोल

कर कहते हैं ।"

इस तरह कुछ उसने तारीफ की और कुछ मैंने दो-चार बातें और कह कर प्रभाव डाला और उन्होंने हमें जाने की आज्ञा देदी ।

जब मामला अधिक उलझ गया था, तो बच्चे वाली औरत नीचे उतर आई थी और बेबस निगाह से इधर-उधर शून्य में झांक रही थी, जैसे मौत का इन्तजार कर रही हो । मैंने उससे कहा था—

"बीबी ! तुम क्यों उतर आईं, तुम तो ऊपर बैठो ।"

उसके मुंह से एक शब्द नहीं निकला था । एक ऐसी दृष्टि से मुझे देखा था जिसमें सब आशाएँ मर चुकी थीं ।

वह अभी तक निश्चल खड़ी मौत का इन्तज़ार कर रही थी । उसने उन लोगों का फैसला नहीं सुना । मेरे कहने के बाद भी बड़ी मुश्किल से हरकत में आई और धीरे-धीरे तांगे में चढ़ी । उसके बाद मैं भी बैठ गया ।

तांगा अभी चलने भी न पाया था ति नई मुसीबत खड़ी हो गई ।

सामने से एक आदमी साईकिल पर सवार आ रहा था । उसे देख कर दो-तीन आवाज़ों ने एक साथ कहा—

"लो वे जत्थेदार साहब आ रहे है । उनसे फैसला करा लिया जाए ।"

हमें फिर रोक लिया गया । औरत पर फिर मौत की उदासी छा गई ।

जत्थेदार ने तांगे के पहिए पर पाँव रख कर साईकिल रोक दी और बिना उतरे वैसे ही खड़े-खड़े तमाम कहानी सुन कर उस आदमी से जिसने तांगा रोका था और जो अब मेरा वाकिफ़कार बन गया था, कहा—

"मेरे फैसले की क्या जरूरत है ? तुम इस इलाके के मालिक हो । जो ठीक समझते हो करो ।"

उसने कहने को तो इतना ही कहा, लेकिन मैंने देखा कि वह साई-

किल पर पैडल मारते समय आँख से जो इशारा कर गया है वह बहुतही खतरनाक है । चुनाचे उन्होंने हमारे गिर्द जमा होकर कहा—

"जत्थेदार ने सोचने का हुक्म दिया है । अब तो हम नहीं जाने देंगे ।"

"जत्थेदार साहब का हुक्म तो मैंने भी सुना है । उन्होंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही ।" मैने बात बनाई और आगे कहा, फर्ज कीजिए जत्थेदार ने हुक्म ही दिया हो, आदमी को अपने कहे का भी कुछ खयाल होता है । जब तुमने एक बार कह दिया कि जाओ तो बस अब जाने दो ।"

"नहीं जी ! यह कैसे हो सकता है ? हमारी बात कुछ और थी । हम जाने भी देते । अब जत्थेदार की बात तो जरूर होगी ।"

बड़ी गम्भीर स्थिति थी । वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे, जैसे उन पर भूत सवार हो गया हो । औरतें टाँगे से नीचे उतरने को तैयार थीं । लेकिन मैं उन्हें रोक कर खुद नीचे उतर पड़ा और ताँगे के आगे खड़ा होकर शान्त मगर दृढ़ स्वर में बोला—

"अच्छा जत्थेदार की बात ही सही । हमने उन्हें रक्षा का वचन दिया है और जीते जी जरूर रक्षा करेंगे ।"

मेरे साथ ही साथ महता सिंह भी उतर आया और ताँगेवाला उतर आया । उस आदमी ने जिसने साईकिल पर आकर ताँगा रोका था और जिसे जत्थेदार ने इलाके का मालिक कहा था, अपने साथिओं को शान्त रहने का इशारा किया, मेरी आँखों में आँखें डाल कर एक मिनट तक देखा फिर कहा—

"अच्छा जाओ । तुम जान पहचान के निकल आए । अब तुम्हारे साथ क्या झगड़ा करेंगे ?"

ताँगा चल पड़ा और वे लोग पुली की ओर लौट गए ।

"अच्छा हुआ झगड़ा नहीं किया ।" ताँगे वाले ने कहा, मैं इन लोगों को जानता हूँ और इनकी करनी भी जानता हूँ ।"

वह घोड़े की पीठ थप-थपाने लगा और तनिक ठहर कर फिर बोला—

"पहले तो मैं इसलिए चुप हो गया था कि चलो हमें क्या, पड़ोस का मामला है, किसलिए झगड़ा करना है। पर जब देखा कि तुम इतना कुछ कर रहे हो, जान तक खतरे में डालने को तैयार हो तो सोचा हम क्या मर्द नहीं हैं। अन्न के कीड़े हैं? दूसरों के लिए कुछ भी नहीं कर सकते?"

वह भी देहात का रहने वाला था। स्वस्थ और सबल था। छाती चौड़ी और कन्धे मजबूत थे। पहले भी जब मैं उनसे बातें कर कर रहा था, जरा भी अलग नहीं होता था, जैसे मेरी रक्षा का बोझ उसने अपने ऊपर ले लिया था। वह चुपचाप देखता और सुनता रहा था, लेकिन अब वह अपने मन की बात कह रहा था—

"तुम्हें जरा हाथ लगाते फिर देखते क्या होता है। वाह गुरूजी झूठ न कहलाए, लड़ने में मैं दस आदमियों का मुकाबला कर सकता हूँ।"

शहर थोड़ी दूर रह गया था। हम निश्चिन्त आगे बढ़ रहे थे। सामने से एक व्यक्ति आता दिखाई दिया। लम्बा क़द, भरा हुआ खूबसूरत चेहरा। सिर पर मोटा सफेद साफा बंधा था जिसका छोर कान के पास लटक रहा था। कन्धे पर गंडासा था। बड़े रोब और शान से चल रहा था। उसकी आँखों में न जाने क्या बात थी कि उसे देख कर जरा भी भय और शँका नहीं होती थी।

"यह सिंह बहुत ही भला आदमी है।" ताँगे वाले ने कहा—

"सारा दिन इधर-उधर घूमता रहता है, इसका काम ही यह है कि कोई मुसलमान मिले तो उसे कैम्प में छोड़ आए।"

जब वह करीब आया तो ताँगे वाले ने उससे मेरा परिचय कराया और हमारे साथ जो बीती थी वह कहानी सुनाई। वह वाकई बेलाग भला आदमी था। बहुत ही मीठी बात करता था। वह खड़ियाल

का रहने वाला था और उसका नाम बनता सिंह था। उसने क्षमा माँगते हुए कहा कि मैं सुबह से फिरते-फिरते थक गया हूँ। अब थोड़ी देर आराम करूँगा। आगे दो बूढ़ी औरतें और जा रही हैं। उनके साथ मैं अपने एक साथी को कर आया हूँ। तुम भी ख्याल रखना। अखोई से आगे निकल जाओ तो फिर कोई खतरा नहीं।

थोड़ी दूर आगे चल कर हमें उसका साथी और वे औरतें मिलीं। अब एक अजीब बात देखने में आई। उनमें से एक बुढ़िया और हमारे साथ तांगे में बैठी जवान औरत दोनों एक साथ रो पड़ीं।

"तुम क्यों रोती हो ?" मैंने उस औरत से पूछा।

"वह बुढ़िया मेरी सास है।" उत्तर मिला।

वह तांगे से उतर कर बुढ़िया के गले से चिपट गई। रोई खूब रोई। बुढ़िया भी रो रही थी। वे एक दूसरे के लिए मर चुकी थीं। मिलने की आशा खो चुकी थीं। अब जब अचानक मेल हुआ तो उनका गम उबल पड़ा था, आंसू बन-बन कर बह रहा था।

मैं और महता सिंह नीचे उतर आए और इन औरतों को तांगे में बैठा दिया। अखोई के पास हमें कोई आदमी नजर नहीं आया। जब हम वहाँ से आगे गुजर गए तो बनता सिंह का साथी लौट गया।

अब हम संगरूर पहुँच गए थे। थोड़ी दूर पर कैम्प था जिसमें शहर और देहात के बीस-पच्चीस हजार मुसलमान जमा थे। मिर्जा खुरशीद बेग इन्चार्ज था। हम इन औरतों को जब उसके सुपुर्द करके लौटने लगे तो सबकी आँखों में कृतज्ञता भरी थी। जवान औरत ने मेरे पास आकर कहा—

"भाई, तुमने जो नेकी की है उसे हम कभी नहीं भूलेंगी। इस समय हमारे पास देने को कुछ नहीं है।"

"लेने देने की बात नहीं बीबी। यह सयासी आदमी हैं। इनका काम ही यह है।"

वे औरतें अब पाकिस्तान चली गयी हैं। तांगे वाले से कभी-

कभी भेंट हो जाती है । वह बड़े आदर और सत्कार से मिलता है ।

जसवन्त ने जब यह कहानी खत्म की तो उसके होठों पर ऐसी मधुर, मृदुल मुस्कान खेल रही थी जो उसी समय उत्पन्न होती है जब आदमी की आत्मा में अतुल उल्लास भरा हो ।

मृत्यु

अट्ठारह साल हुए मैंने अनेक आदमियों को पैर पटक-पटक कर मरते देखा था। इन दिनों जाने क्यों बार-बार वह घटना स्मरण हो आती है और मैं बैठा उस पर विचार करता करता हूँ।

मुझे वह घटना उस समय बहुत याद आ रही थी जब मैं गत सप्ताह मुन्शी प्रेमचन्द के उपन्यास 'गबन' का वह भाग पढ़ रहा था, जहाँ रत्ना का बूढ़ा पति वकील दम तोड़ रहा है। वह मर रहा था। उसने जिन्दगी में बहुत सा धन कमाया था। अब उसे यह चिन्ता लगी हुई थी कि इस धन का कोई वारिस नहीं है। उसका इकलौता बेटा लड़कपन में ही मर गया था। उसे यह गम खाए जा रहा था कि जो धन उसने कमाया था, गैर उसके वारिस बनेंगे। उसकी बुद्धि की कमाई पर ऐश करेंगे। रत्ना मौत के नाम से डरती थी। वह उसके सामने वसियतनामा लिखवाने का नाम भी नहीं लेता था। अन्दर ही अन्दर घुल रहा था और उसके मन में यह दुःख नासूर बन गया था कि उसकी जयदाद का कोई वारिस क्यों नहीं है। उसे अपने मृत पुत्र की याद आ रही थी। अपना धन याद आ रहा था। और वह मर रहा था—इतना बीमारी से नहीं जितना इस दुःख से कि उसके बाद उसकी धन-सम्पत्ति का कोई भी वारिस क्यों नहीं है।

मुझे इस बूढ़े वकील से कोई सहानभूति नहीं थीं। आखिर उसे मरना ही तो था। उसके न मरने से किसी का क्या बनता-संवरता था? दूसरे विवाह की जवान पत्नि रत्ना को भी उसके जीवित रहने से कोई लाभ नहीं था। उसके अपने अरमान, मुद्दत हुई मर चुके थे; अब उसका एक मात्र काम बीमार पति को दवाईयां खिलाना

रह गया था । मुझे उसकी विरासत की भावना से कोई सहानुभूति नहीं थी । उसे धन के छोड़ जाने का इतना गम क्यों है ? धन कोई छाती पर धर कर तो ले नहीं जाता । इसीलिए उपन्यास लेखक प्रेमचन्द को भी इस वृद्ध वकील और उसकी विरासत की भावना से कोई सहानभूति नहीं थी ।

जिस बूढ़े वकील की मृत्यु का हाल पढ़ते-पढ़ते मुझे उस पैर पटक-मरने वाले आदमी की याद आ रही थी, जिसे मैंने अपनी आँखों के सामने दम तोड़ते देखा था । वह भी बूढ़ा था और इस वकील की तरह सदा का रोगी था । वह भी बहुत सी धन-सम्पत्ति का मालिक था । उसे भी अपने मरने का रंज था । हालांकि रंज का कोई कारण नहीं था, उसकी जयदाद का वारिस उसका जवान बेटा मौजूद था ।

इन दोनों घटनाओं का आपसी सम्बन्ध कोई नहीं । फिर भी मुझे यह घटना क्यों याद आ रही थी ? मैंने उपन्यास पढ़ना छोड़ दिया । और इसी बात पर विचार करने लगा । बहुत देर सोचने के बावजूद किसी विशेष निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका । अलबत्ता अट्ठारह साल पुरानी वह घटना ज्यों की त्यों जेहन में उभर आई । जैसे वह आदमी मेरे सामने आज ही मर रहा हो और मुझे उसकी आत्मा को सांत्वना देने के लिए गीता के श्लोक-उच्चारण करने का काम सौंपा गया हो ।

यह सन् १९३२ की बात है । मैं उस समय आर्य हाई स्कूल लुधियाना में दसवीं श्रेणी में पढ़ता था ।

छात्रालय में रहने वाले तीन सौ विद्यार्थियों की आर्य कुमार सभा का प्रधान था । इसलिए दोनों समय संध्या हवन में सम्मिलित होता था और सबसे आगे की पंक्ति में बैठ कर पवित्र अग्नि में आहुतियाँ डाला करता था । लाहौरी राम मेरा परम मित्र था । उसका गाँव

वहां से सात कोस की दूरी पर स्थित था । गांव के लोग उसे अक्सर मिलने आते थे । चूंकि हम दोनों प्रायः इकट्ठे रहते थे, इसलिए उन सबसे अच्छी जान पहचान हो गई थी । लाहौरी राम के पिता मुझे अपने पुत्र तुल्य समझने लगे थे और कई बार अपने गांव आने के लिए निमन्त्रित कर चुके थे । उनके स्नेह और बार-बार के तकाजे से विवश होकर मैंने गर्मी की छुट्टियों में उनके गाँव—हम्बड़ाँ चलने का निश्चय कर लिया ।

छुट्टियां आयीं और मैं लाहौरी राम के साथ उसके गाँव चला गया। उनके पड़ौस में ही दूसरा घर था, जिसमें वह बूढ़ा आदमी चिरकाल से बीमार पड़ा था । उसका सारा शरीर सूज गया था । वैद्यों और डाक्टरों की बहुत सी दवाईयां इस्तेमाल कर चुका था; पर रोग था कि दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा था । "सकी अवस्था भी अधिक हो गई थी । वह बूढ़ा हो चला था । मुद्दत से दमे का रोगी था । लोग कहते अ कि उसके भीतर बलगम बहुत बढ़ गई है, इसीलिए सारा शरीर फूल गया है । वह सारी-सारी रात कराहा करता और "खों-खों" किया करता । उसकी आहें हमारे लिए सोना हराम कर देतीं । कई बार बाप-बेटे की झड़प सुनाई देती ।

"चुप मारके क्यों नहीं पड़ा रहता ?"—बेटा कहता ।

"नालायक ! कहता हूँ तनिक शरीर दबा दे । नहीं मानता"

वह अपने बेटे तीरथराम को नालायक समझता था । तीरथ-राम उन्नीस-बीस साल का जवान आदमी था, स्वस्थ और सुन्दर । मुझे वह शहर में कई बार मिल चुका था । बड़ा ही विनम्र और मिलनसार था । मुझे बड़ा ही अच्छा लगता था । उसमें नालायकी अथवा अयोग्यता के चिन्ह दिखाई नहीं पड़ते थे । लेकिन पिता को यह चिन्ता घुन की तरह खा रही थी कि वह उसके बाद सब चौपट कर देगा । उसका हजारों का धन-माल कौड़ियों के भाव लुटा देगा ।

उसने अपने हाथों से आज तक कोईकाम नहीं किया। दुनिया में किस प्रकार रहना चाहिए, इस बात का उसे तनिक भी ज्ञान नहीं था। सदा आवारा घूमता है। बड़ों का कुछ भी आदर-सम्मान नहीं करता। बड़ा नालायक है।

यह ठीक ही था कि तीरथ राम अभी तक कारोबार में नहीं पड़ा था। बाप ने उसे पढ़ने ही नहीं दिया क्योंकि वह अपने हाथ से सब कुछ करने का आदी था। बेटे की बुद्धि पर उसे तनिक भी भरोसा नहीं था। इसके अतिरिक्त जमीन थी, जिसकी बंटाई आती थी। सारे काम की निगरानी वह खुद करता था। तीरथ राम क्या जाने कि आसामी से रुपया किस तरह वसूल किया जाता है। वह आसामी को आँखों में आंसू भर कर गिड़गिड़ाते देखेगा, तो उसका हृदय पसीज जायगा और वह ब्याज का सब रुपया छोड़ देगा। अथवा कड़वा बोलेगा, जो आसामी को बुरा लगेगा। बोल भी मीठा बोले और पाई की कांप भी न खाए। यह सिर्फ़ वही जानता है। वह पुराना साहूकार था, बाजार—व्यापार के हथकन्डों से परिचित।

जहाँ तक पिता की सेवा-सुश्रुषा का सवाल था, तीरथ राम ने कोई कसर उठा न रखी थी। वह दो साल से दवाईयां पीस-पीस कर खिला रहां था। रात को जाग कर 'मुट्ठीचापी' करता था, काढ़े उबालते माजून बनाते-बनाते उसकी पीठ दुहरी हो गई थी। फिर भी बूढ़े की शिकायत थी कि वह उसके लिए कुछ भी नहीं करता। लेकिन वह भी सच कहता था। उसे इन दवाईयों से और उसकी सेवा-सुश्रुषा कोई लाभ नहीं पहुँच रहा था। तमाम खाया-पीया बलग़म के रूप में बाहर निकल जाता था।

उसे अपना शरीर खोखला-खोखला और बोदा मालूम होता था, जैसे हवा के एक झोंके से टूट जाएगा। वह प्रतिक्षण मौत को अपनी ओर बढ़ते देख रहा था। वह साकार और भयानक थी। विकराल रूप बनाए और दाँत निकाले उसे अपनी ओर बढ़ती दिखाई

देती थी । उसे आती देख वह काँप उठता, चिल्लाता और पाँव पटकता और फिर अपने बेटे तीर्थराम को नालायक कहता जो दवाईयां पीसते-पीसते तंग आ चुका था, और कई बार झुंझलाकर कह देता था कि मरे तो मंजी (खाट) छूटे ।

कभी उसका कंठ घर्रर्र-घर्रर्र बोलने लगता और साँस ऊपर चढ़ जाती । वह हाथ-पाँव ढीले छोड़ देता । पड़ोस के लोग जमा हो जाते । मगर थोड़ी ही देर में हालत फिर संभल जाती । सांस ठीक चलने लगती और आहें सुनाई देतीं । मगर जैसा प्रत्येक आक्रमण उसकी शारीरिक शक्ति के साथ ह्रास का कारण होता था । वह हरएक हमले के बाद निर्बल और क्षीण होता जा रहा था । मौत समीप आ रही थी और नब्ज छूटती हुई मालूम होती थी ।

हमने पहले दिन उसकी यह दशा देखी तो आश्चर्य और खेद हुआ। लेकिन दूसरे लोग जरा भी नहीं घबराये, उसका बेटा तीर्थराम भी नहीं घबराया । उनके लिए यह साधारण बात थी। लाहौरी राम के पिता ने हमें तसल्ली दी—"चिन्ता की बात नहीं, उसे ऐसे ग़श आते ही रहते हैं ।"

हमने देखा कि वाकई उसे यह ग़श अक्सर आते थे और ग़श के बाद तबियत फिर संभल जाती थी । ग़श सांस की तरह उसके जीवन का अंग बन चुके थे । लेकिन यह ग़श तो बहुत ही खतरनाक मालूम होता था । मालूम नहीं कौन सा हमला सिद्ध हो ।

एक दिन सांयकाल के समय हम गाँव के बाहर खुले मैदान में कबड्डी खेल रहे थे । तीर्थ राम भी हममें शामिल था । खेल में हम इतने व्यस्त थे कि बूढ़े की बात सर्वथा भूल गई थी कि अकस्मात श्रीराम को तेजी से अपनी ओर आते देखा । श्रीराम, तीर्थराम का मामा था और बिमारी में बहनोई की देखभाल करने आया हुआ था । उसने घबराये हुए तीर्थराम को पुकारा "जल्दी चलो, लालाजी मर रहे हैं ।"

"मर रहे हैं ? वैसे ही ग़श आया होगा !"

"है तो ग़श ही, पर अब वे नहीं बचेंगे।" उसका गला रुंध गया था।

तीर्थराम उसके साथ चल पड़ा। अब हमारे लिए भी खेल जारी रखना उचित नहीं था। हम भी धीरे-धीरे घर की ओर चले। हम थोड़ी ही दूर गए थे कि एक व्यक्ति और मिला जो मुझे बुलाने आ रहा था।

जब हम पहुँचे तो तीर्थराम का बूढ़ा बाप बहुत ही कष्ट में था। उसका प्रत्येक अंग असह्य वेदना में तड़प रहा था। सांस तेजी से चल रही थी और गले में घुंघरू सा बज रहा था।

"तुम्हारी गीता कहाँ है ?"

मैं हर रोज़ गीता पढ़ा करता था। लाहौरीराम के पिता ने मुझे गीता लाने को कहा और मैं तत्काल ले आया।

उन्होंने मुझे रोगी के सिरहाने बैठा दिया और कहा कि मैं अठारवें अध्याय के श्लोक उच्च स्वर से पढ़ूं। ताकि भगवान कृष्ण के पवित्र शब्द मरनेवालों की आत्मा में बैठ जाँय और उसे शान्ति प्राप्त हो।

रोगी मर रहा था और मैं गीता पढ़ रहा था। मैं गीता पढ़ता रहा और उसे शान्ति होती रही, यहाँ तक की वह बिल्कुल शान्त और ठंडा हो गया।

दूसरे दिन अर्थी उठी और हम सब उसको श्मशान में जलाकर दूर चले आये। शोकासन बिछा लोग बातें कर रहे थ—"उसके सहारे घर चल रहा था। लड़का कच्ची समझ का नौजवान है। उसे काम का कुछ भी अनुभव नहीं।"

बातें सुनी तो मेरे मन में तीर्थराम के प्रति सहानुभूति हुई और उसके पिता के मरने का खेद भी हुआ। लेकिन जब थोड़ी देर बाद मैं ऊपर गया तो देखा तीर्थराम अपने परम मित्र गिरधारीलाल के पास बैठा बातें कर रहा है और उसके मुख पर दुःख और विषाद का

नाम तक नहीं ।

"दवाईयाँ खिलाते-खिलाते हम तो तंग आ गए थे । अब उसे मरना तो था ही ।" तीर्थराम कह रहा था ।

"हां, माँ-बाप सदा सिर पर तो बैठे नहीं रहते; पर जब तक जीते हैं सहारा रहता है ।"

"सहारा-वहारा कुछ नहीं था । उलटा मुसिबत बना हुआ था । न खुद कुछ कर सकता था न हमें करने देता था । अब मैं खुड्डियाँ लगवाऊँगा, कुएँ की मरम्मत करुँगा । छप्परवाली ज़मीन ठेके पर दूँगा । सुमित्रा का विवाह वजीराबाद में कर दूँगा । लड़का सुन्दर और सुशील है, जायदाद का होना कोई जरूरी नहीं ।"

वे देर तक बातें करते रहे । मैं रात का जगा हुआ था, पड़ते ही सो गया ।

अब अठारह साल बाद मुझे वह घटना न जाने क्यों अक्सर याद आ जाती है । सुबह जब मैं अखबार पढ़ता हूं तो ऐसा मालूम होता है कि अखबार के पन्नो पर अजीब बैचेनी और विकलता छाई हुई है । एशिया का नक्शा खुला पड़ा है और उस पर एक बूढ़ा रोगी—तीर्थ-राम का बाप जिन्दगी के लिए हाथ-पाँव पटक रहा है; लेकिन मौत क्षण-क्षण आगे बढ़ती आ रही है और उस पर अपनी गिरफ्त मज़बूत करती जा रही है । उसे अपने मरने का रंज है और यह रंज इसलिए है कि उसके वारिस अयोग्य सिद्ध होंगे, उसने जो धन सम्पति इतने यत्न से जुटाई उसे कौड़ियों के भाव लुटा देंगे । लेकिन मुझे मालूम है कि उसके बाद कोई भी काम अटका नहीं रहा । तीर्थराम ने सब संभाल लिया था और फिर मुझे उसके शब्द याद हो आते हैं—"उस का जीना उलटा हमारे लिए मुसीबत बन गया था "

सुबह-शाम

रेलवे लाईन पार कर नारायण पार्क में आ बैठा । घास पर कई बच्चे खेल रहे थे । दो जवान पंजाबी लड़कियाँ इधर से उधर टहल रहीं थीं । उन्होंने शलवारें पहन रखी थीं । उनमें से एक लड़की जिसके दो चोटियाँ थीं, अधिक सुन्दर थी । वे अभी-अभी इधर आई थीं । नारायण उनके पीछे अनायास ही चला आया था वरना वह पार्क से परिचित नहीं था । पहली बार आने का संयोग हुआ था ।

वह एक तरफ घास पर बैठ गया और उचटती सी दृष्टि डालकर इर्द-गिर्द का निरीक्षण करने लगा । इन लड़कियों के अतिरिक्त दस-ग्यारह साल का एक लड़का साईकिल चलाना सीख रहा था और चन्द बच्चे खेल रहे थे । सामने बंगाली मार्केट थी । सूर्य छिपा नहीं था, फिर भी कहीं-कहीं बत्तियाँ जल गईं थीं । कुछ इमारतों पर तिरंगे झण्डे लहरा रहे थे । दाईं ओर एक मस्जिद थी । दंगे के दिनों में लोगों ने इसके कुछ भाग ढा दिए थे । अब सूनी और वीरान पड़ी थी । दिन डूबने वाला था और अन्धेरा दुनिया पर छा जाने की सोच रहा था ।

दिन डूबने की बात सोच कर नारायण परेशान हो उठा । हर रोज दिन चढ़ता है और यों ही डूब जाता है । सूरज का चढ़ना और एक ऐसा क्रम है जो दुनिया के आरम्भ से चलता आया है और चलता रहेगा । अब यह एक साधारण बात हो गई है । लोगों ने इस सम्बन्ध में सोचना भी छोड़ दिया है । लेकिन पिछले कुछ दिनों से यह साधारण बात नारायण के जेहन में असाधारण बन कर खटकने लगी थी । शायद कारण यह हो कि वह सुबह सूर्योदय से शाम को

सूर्यास्त तक कुछ भी नहीं कर पाता । सुबह से उठ कर इधर-उधर घूमता है और कोशिश करता है कि रहने-सहने का कोई ठिकाना लग जाए । लेकिन जब दिन भर की दौड़ धूप के बाद भी असमर्थ रहता है तो सूरज को डूबते देख कर उसे ऐसा लगता है जैसा उसका अपना अस्तित्व डूबा जा रहा हो । उससे कोई प्रिय वस्तु छिन रही हो । उसके जीवन का एक मुख्य भाग अतीत के अन्धकार में खोया जा रहा हो ।

सूर्य नियत समय पर उदय हुआ और अब नियत समय पर अस्त हो रहा था । नारायण उसे रोक नहीं सकता, लेकिन उसे यह विचार नागवार गुजर रहा था कि उसने आज का दिन भी बेकार खो दिया है । दुनिया में उसका कोई महत्व नहीं ।

वह अपने मन और मस्तिष्क की समस्त शक्ति खर्च कर इस विचार को झुटलाना चाहता था ।

विचार कोई नया नहीं था और उसे झुठलाने की कोशिश भी नई नहीं थी । नारायण कई दिनों से इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ था ।

सचेत व्यक्ति का जीवन जितना अधिक अव्यवस्थित होता है उतना ही अधिक वह सोचने लगता है । नारायण की भी यही दशा थी । अपने मन को तसल्ली देने के लिए उसने दर्शन के इस विकासवादी दृष्टिकोण का सहारा लिया था कि जाने अनजाने जीवन का निर्माण होता रहता है ।

लेकिन नारारण चेतन-बुद्धि रखता था । वह घटनाओं का निरीक्षण करके जान लेना चाहता था कि उसका जीवन आज कल जिस ढँग से व्यतीत हो रहा है उसमें निर्माण का कौन सा पहलू निहित है ? वह जानना चाहता था कि यह दिन, जो अतीत के अन्धकार में खोया जा रहा है, उसकी जिन्दगी पर कौन सा स्थाई प्रभाव छोड़ गया है ।

सूर्यास्त में वह सुबह और शाम को एक दुसरे में विलीन होते हुए

देख रहा था; कोई ऐसी बात, जिससे यह कोने परस्पर न मिलें, सुबह-शाम में विलीन न हों । इन दोनों में कोई विशेष अन्तर दीख पड़े । मगर कोई बात बनती नहीं थी । उलझे विचार मस्तिष्क में चक्कर लगा रहे थे और खोए हुए क्षणों की भाँति उसे चकमा दे रहे थे । उन में कोई क्रम, कोई सिलसिला नहीं था ।

थोड़ी देर पहले वह एक रेस्तोरां में बैठा चाय पी रहा था। चाय पीना तो सिर्फ एक बहाना था; वास्तव में वह इधर उधर घूमने फिरने से थक गया था और अब आराम कर रहा था । वरना इतनी देर वहाँ बैठे रहने का क्या मतलब ? उसके दाएँ-बाएँ से लोग उठ कर जा रहे थे, नए आ बैठते थे । थोड़ी देर में वे भी चले जाते थे और नए आ बैठते थे । लेकिन वह वहीं बैठा था और सोच रहा था ।

सोच रहा था और बैठा था ।

आखिर यह सोचना भी नागवार हो गया; उसने इधर-उधर नजर डाली कि कोई परिचित व्यक्ति हो, उससे मिले । बातें करे और मन बहलाए । मगर वहाँ कोई भी आदमी परिचित नहीं था । कुछ भी हो वह इस सोचने से छुटकारा पाना चाहता था । मस्तिष्क को एक दम विचार-रिक्त कर देना चाहता था । उसने वेटर को बुला कर दोबारा चाय लाने का आर्डर दिया ।

इसी बीच में उसकी मेज के सामने की कुर्सी पर एक नौजवान आ बैठा । नारायण उसे ध्यान से देखने लगा । सांवला रंग, आकर्षक रूप-रेखा, उम्र बीस-इक्कीस वर्ष से अधिक न होगी । आँखें मोटी-मोटी और चमकदार थीं । चेहरे पर किसी प्रकार की घबराहट नहीं थी । व चुप-चाप और शांत बैठा था । उम्र से अधिक प्रौढ़ और गम्भीर दीख पड़ता था । उसने आस-पास के लोगों से अथवा नारायण से किसी प्रकार की दिलचस्पी प्रकट नहीं की । वह वातावरण से उदासीन नजर आता था । कभी-कभी अपने बाएँ हाथ की उस अँगुली की ओर देख

लेता था जिस पर पट्टी बंधी हुई थी ।

लेकिन नारायण इस व्यक्ति में दिलचस्पी ले रहा था । उसे ध्यान से देख रहा था, वह बात करना चाहता था । लेकिन किसी प्रकार की जान पहचान नहीं थी । बातचीत शुरू कैसे हो ? अंगरेजों की तरह मौसम से शुरु करे ?...

लेकिन वह तो मौसम में भी दिलचस्पी नहीं ले रहा था । फिर नाक को उल्टा पकड़ने से लाभ ? सीधी तरह बात शुरू हो सकती है । वह पूछ ले—

उंगली में पट्टी क्यों है ? कुछ निकल आया है अथवा चोट लगी है ? या फिर इस गम्भीरता का कारण क्या है ? यह कहीं अधिक परेशानी से तो उत्पन्न नहीं हुई ?

इच्छा होते हुए भी अजनबी से बात करना बहुत कठिन है और विशेषत: उस समय जब आदमी रेस्तोराँ में बैठा हो और अपने आप को 'सभ्य' समझता हो । नारायण उसकी ओर देखता ही रहा—बोला कुछ नहीं ।

नारायण के साथ ही साथ उसके लिए भी चाय आ गई और उन दोनों ने अपनी-अपनी चाय चुपचाप पीली । चाय खत्म होते ही वह नौजवान झटपट उठ खड़ा हुआ । बिल मँगवाने का भी इन्तजार नहीं किया और कांऊटर की ओर चल दिया । इस पर नारायण को न जाने क्या तैश आया कि वह भी झुँझला कर उठ खड़ा हुआ और दूसरे ही क्षण कांऊटर पर खड़ा नोट हाथ में लेकर बोला—

'जल्दी करो, पैसे लो । मेरे पास वक्त नहीं है ।

और अब वह यहाँ बैठा अपनी हरकत को याद कर रहा था और सोच रहा था कि इस प्रकार झुँझलाने का कारण क्या था ? नौजवान को यह सुना देना क्यों जरूरी समझा कि उसके पास समय नहीं है, जबकि इसके बाद भी वह इधर-उधर घूमता रहा है, घूमने के अतिरिक्त कोई काम नहीं किया उसने ।

और अब यहाँ बैठा है । वक्त उसकी नज़रों के सामने बीता जा रहा है' अतीत के अन्धकार में खोया जा रहा है ।

आदमी बिना मतलब भी तो झुँझला सकता है —उसने सोचा । और इधर-उधर देखने लगा । साईकिल वाला लड़का पैडल मार कर संतुलन ठीक रखने कीं कोशिश कर रहा था । बच्चे खेल में व्यस्त थे । लड़कियाँ टहल रही थीं और बातें कर रही थीं—गर्म और दिलचस्प बातें ! सुन्दर लड़की बार-बार सिर हिला रही थी जिससे चोटियों में गति उत्पन्न होती थी और वे लहरानी हुई अच्छी लगती थीं । सामने बिजलियाँ कुछ और जल गयी थीं । अन्धेरा बढ़ रहा था और बढ़ते हुए अन्धकार में मसजिद की वीरानी और सूनापन भी बढ़ रहा था, जो भयानक मालूम होता था ।

'खंडहर !'—मसजिद की ओर कुछ देर देखते रहने के बाद नारायण सोचने लगा । सोचता रहा—इन्सानों ने बर्बरता का खेल खेला है । दोनों ओर ऐसा हुआ है...

उसकी दृष्टि के सामने हिन्दुस्तान का—समस्त हिन्दुस्तान का—नक्शा घूम गया- हज़ारों लाखों खण्डहर उभर आए । मजहब ने मज़-हब पर चोट की है, देश जख्मी हुआ है और साम्राज्य मुस्कराया है । अजीब तमाशा है । तमाशा कहाँ, सत्य ! क्रूर सत्य । सतारहवीं सदी—हितों का संरक्षण—मूर्खता और जड़ता । मगर समय की गति कहीं रुकती है, जो उसके साथ चलने से इन्कार करता है, पिस जाता है । ...हां, जान तो बच गयी । पर क्या करें इस जान को लेकर । न मकान मिलता है और न रोजगार । इससे अच्छा तो हमें निकाल कर ही न लाती । उधर ही रहने देती । अच्छा होता जितने मर गए हैं उतने और मर जाते । जो बच जाते वे अपने-अपने घर आराम से तो रहते । इस तरह तो मिट्टी खराब न होती ।,

नारायण अब कनाट सर्कस के एक दोराहे पर खड़ा सोच रहा था कि इस ओर जाएँ या उस ओर, तो किसी ने अकस्मात उसके कन्धे पर

हाथ रख दिया । वह उसका चिर-परिचित था । पश्चिमी पंजाब से आया था उसने यह शब्द कहे थे और वह यहीं पर बस नहीं हुआ था —'बरबादी सी बरबादी हुई है । लोग कहते हैं हमें आज़ादी मिली है अच्छी आज़ादी है । वाह आज़ादी है ! और उसने पागलों की नाई हँस दिया । इस हँसी में बरबाद मनुष्य की आत्मा कराह रही थी ।

समय ने करवट बदली । कितने ही निरपराध, निर्दोष पिस कर रह गए ।

नारायण इन पिसे हुओं की कल्पना कर रहा था और उसके कानों में अपने मित्र की वीभत्स हँसी गूंज रही थी । गूँज रही थी और आज़ादी की अवहेलना कर रही थी । हालांकि वह मित्र स्वयं आज़ादी का इच्छुक था । उसने आज़ादी के लिए चर्खा काता था और जेल गया था । फिर आज़ादी की यह अवहेलना क्यों ? क्यों ? किस कारण ? नारायण चौंक उठा । उसने वातावरण पर एक दृष्टि डाली ।

'यह आज़ादी नहीं, आज़ादी के लिए तो अभी लड़ना है ।'

उसने सुर्ख बादलों में पढ़ा, जो छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में इधर-उधर बिखरे हुए थे और एक स्थान पर एकत्रित होने के लिए सँघर्ष कर रहे थे ।

संघर्ष सूर्य की अन्तिम किरणों का शुभ-सन्देश था ।

नारायण फिर अपने विचारों में डूब गया और सोचने लगा । अब उसके विचार पहले की तरह अस्त-व्यस्त नहीं थे । उनमें एक व्यवस्था, एक क्रम उत्पन्न हो गया था । पहले भी क्रम का यथार्थ अभाव नहीं था । दरअसल अव्यवस्था में क्रम रहता है । उसके विचार एक ही जज़बे की कड़ी थे और वह झुंझलाहट व्यर्थ नहीं थी ।

हां, वह स्पष्ट देख रहा था कि झुँझलाहट व्यर्थ नहीं थी । उसने समय के साथ चलने से इन्कार किया था । और इन्कार उस सत्य

से विपरीत था जो क्षण-क्षण परिस्थितियों से लड़ता-झगड़ता और कठिनाइयों में अपना मार्ग खोजता हुआ उसकी आत्मा में घुलमिल गया था। वह अपने आप को धोखा दे रहा था। इस मन्जिल को आज़ादी न समझते हुए भी ठहर जाना और आराम करना चाहता था।

आराम का मतलब है गति का त्याग—जड़ता, जो सजीव आत्मा को पसन्द नहीं। आत्मा चिल्ला उठी—'चलो। जल्दी करो। मेरे पास समय नहीं।'

क्योंकि वह आत्मा को धोका देकर इस स्थान पर ठहरना और आराम करना चाहता था। इसलिए तो उसने पिछले चन्द दिनों में अपनी समस्त शक्ति नौकरी प्राप्त करने में लगा दी थी। उन लोगों के पास मारा मारा फिरता रहा, जिनके साथ उसने जेलें काटी थीं, जो बड़े बने हुए हैं। लेकिन जिनकी बड़प्पन को उसने कभी स्वीकार नहीं किया था, जिनकी राजनीति पर उसे विश्वास नहीं था। जिन्हें पीछे छोड़ कर वह खुद आगे बढ़ गया। आज उन के सामने अच्छे अच्छे भोजन पड़े देख कर पीछे लौट आया था और हाथ फैला कर ग्रास मांगा था।

'सिफारिश की क्या ज़रूरत है। क्या अब भी सिफारशें चलेंगी? जो काबिल है उसे रखा जाए।'

'जी हां, अब भी सिफारिशें चलती हैं और पहले से ज्यादा। काबलियत को कोई नहीं पूछता।

'फिर लानत है ऐसी नौकरी पर। मैं सिफारश नहीं करूँगा।'

ग्रास की तरह फटकार मिली थी। फिर भी नारायण होश में आने के बजाय तिलमिला उठा था—'मैं जानता हूँ तुम्हें; ताकत पा कर बन रहे हो—छोटे आदमी की यहीं आदत होती है।'

वह दूसरे आदमी के पास गया। उससे इस प्रकार के व्यवहार की आशा नहीं थी और उसका विचार दुरुस्त भी निकला। वह बड़े

आदर से मिला और यह सिद्ध करने के लिए कि मैं मन्त्री बन कर भी बदला नहीं हूँ, पुरानी मुलाकातें और जेल की बातें याद दिलायीं—'मुझे तुम्हारी वह कविता अब भी याद है। तुम्हारे अन्दर वही इन्कलाबी स्पिरिट है न ? बदले तो नहीं हो ?'

'नहीं मैं बदला नहीं हूँ और न कभी बदलूँगा।' उसके सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर नारायण ने कहा और फिर नारायण ने जो चाहा उस आदमी ने लिख दिया। अपने सेक्रेटरी को टाईप करने को दिया। जब वह छपे हुए सरकारी क़ागज पर टाईप करके ले आया तो मुस्कराते हुए उस पर हस्ताक्षर कर दिए। और वह सिफ़ारिश पत्र नारागण के हाथ में देते हुए उसने कहा—'लो भई, ईश्वर तुम्हें कामयाब बनाए। हां, एक बात और याद रखना, इस इन्कलाबी स्पिरिट को मत भूलना।'

'मैं आपको विश्वास दिलाता हूं—कभी नहीं भूलूंगा।'

नारायण खुशी से फूला नहीं समाया। दो दिन की दौड़-धूप के बाद उसे सिफारिशी पत्र मिल गया था। अब नौकरी मिल जाएगी चार सौ रुपय तनख्वाह मिलेगी। आराम से रहेगा आराम से। चार सौ रुपये थोड़े तो नहीं होते। लाहौर में तो सवा दो सौ ही मिलते थे। उसका जो घरौंदा टूट गया था, कल्पना ने उसके स्थान पर एक सुन्दर मकान निर्मित कर दिया। इसमें उस आदमी का सहयोग शामिल था जो बड़े आदर से मिला था जो जेल की बातें भी नहीं भूला था—मुझे तुम्हारी वह कविता अब तक याद है।' और फिर —'तुम्हारे अन्दर वही इन्कलाबी स्पिरिट है न ? तुम बदले तो नहीं हो ?'

ज़ेहन में सवाल पैदा हुआ तो उसका जवाब भी ज़रुरी था।

नारायण ने अपने आप को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया—मैं बदला नहीं हूं। लेकिन आत्मा में कहीं न कहीं कांटा-सा खटक

रहा था । उसे अपना विश्वास निर्बल महसूस होता था । जितना सोचता था कांटा उतना ही चुभता था । इस लिए उसने सोचना ही छोड़ दिया ।

सरर-सररर चलती मोटरों और जगमगाती इमारतों की ओर देखने लगा ।

अगले दिन वह इन्टरव्यु के लिए गया । अपनी लिखी पुस्तकों के अतिरिक्त उसने सिफारिशी पत्र दिखाया और अनुभव बयान किया । लेकिन उसका मनोरथ पूरा नहीं हुआ, नौकरी किसी और आदमी को मिल गयी । उसे इस काम का कदाचित ज्ञान नहीं था पर उसके पास सिफारिश बड़ी थी ।

नारायण को इस घटना ने परेशान कर दिया । वह सारा-सारा दिन घूमता रहता था । घूमना निरोद्देश्य नहीं था । वह चाहता था कि रहने-सहने और कमाने-खाने का कोई सिलसिला बन जाए ताकि वह इत्मीनान से बैठ कर लिख पढ़ सके । इस घटना पर सोचे ही नहीं, ऐसे भुला दे जैसे उसके जीवन में ऐसा मौका कभी आया ही न हो ।

लेकिन भुला देना उसके वश का रोग नहीं था । दिमाग़ जब सत्य की उपेक्षा करता है, तो आत्मा उसका बदला लेती है । प्रतिक्रिया आरम्भ होते ही मामूली से मामूली गलती ठेस पहुँचाती है ।

नारायण को भी अब ठेस महसूस हो रही थी । उसके अपने शब्द ज़ेहन में कांटों की तरह चुभ रहे थे । —'नहीं मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, मैं कभी नहीं बदलूँगा ।' जैसे उसने खुद अपना मज़ाक उड़ाया हो वरना एक ऐसे आदमी को विश्वास दिलाने की क्या आवश्यकता आ पड़ी थी, जो उसके आदर्श से सहमत नहीं था; जिसने क्रान्तिकारी शक्तियों का साथ छोड़ दिया था । समय का साथ न दे कर पीछे रह गया था और वही बड़ी शान से पूछ रहा था—'तुम्हारे

अन्दर वही इन्कलाबी स्पिरिट है न ?'

उसे क्या अधिकार था पूछने का ? क्यों हुआ उसे यह साहस ? क्योंकि वह उससे सिफ़ारिशी खत माँगने गया था। उसके आगे रखे हुए भोजन में से ग्रास मांगा। उसके बड़प्पन को स्वीकार किया था। और खुद—खुद इतना हीन और तुच्छ बन गया था कि अपने अस्तित्व के पतावे बना कर उसके बूटों के तलवों में भर दिए थे—रौंदो, रौंदो, मेरे अस्तित्व को मिटा दो।

इस पर यह दावा—'मैं कभी नहीं बदलूँगा !'

और वह आदमी कितना चतुर था। चोट पर चोट किए जा रहा था। विदा करते समय भी मस्कराते हुए उसने कहा था—'जो ईश्वर तुम्हें कामयाब बनायें। हां, याद रखना—इस स्पिरिट को भूलना नहीं।'

जैसे नारायण की आत्मा में स्पिरिट की जोत उसी की कृपा से जगी हो। और उसने कविताएँ भी उसी की सिफारिश से लिखी हों।

'कहां जाओगे ?'

'फव्बारे।'

'लाओ, एक आना निकालो। टिकट दूं।'

'आना ! आना होता तो ब्याह न कर लेते।'

'आना मुझ से ले लो और ब्याह कर लो।'

कंडक्टर मुस्करा दिया। लेकिन नौजवान ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। ट्राम से उतरा भी नहीं। उसी तरह खड़ा रहा चेहरा तनिक कठोर पड़ गया था और उपेक्षा-भाव से दूसरी ओर देख रहा था जैसे कह रहा हो—इस आदमी से मैं क्या बात करूँ। वह मेरी भावना को ही नहीं समझता।'

नौजवान पंजाब से आया था, बहुत कुछ खो कर। सम्भव है

उसने अपनी प्रियतमा को खो दिया हो और वह ब्याह करने से वंचित रह गया हो । लेकिन कंडक्टर कह रहा था—

'आना मुझ से ले लो और ब्याह कर लो ।'

नारायण के मन में नौजवान के प्रति और उसकी कल्पित प्रियतमा के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई । वह जाने क्यों उसके खो जाने की बात सोचने लगा । सोचते-सोचते पुश्किन की वह कहानी उसके ज़ेहन में उभर आई, जिसका हीरो एक लड़की से प्रेम करता था और लड़की हीरो से प्रेम करती थी । लेकिन लड़की के माता पिता इस प्रेम के विरुद्ध थे । उन्होंने एक रात किसी गिरजा में गुप्त रूप से विवाह कर लेना तय किया ।

जब हीरो गिरजा में पहुँचने के लिए घर से निकला तो बर्फ़ का तूफान शुरू हो गया । वह मार्ग भूल गया । रात भर मैदानों और जंगलों में घूमता रहा । दूसरी ओर वह रमणी जब यात्रा की थकान से अचेत पड़ी हुई थी तब उसका ब्याह एक ऐसे व्यक्ति के साथ हो गया जो तूफान से डर कर इस गिरजा में आ छिपा था ।

लेकिन जब रीति अनुसार पादरी ने इस नकली दुल्हा को रमणी का मुंह चूम लेने को कहा तो उसने एकदम आँखे खोल दीं और पहचान कर बोली—

'नहीं, नहीं । यह आदमी वह नहीं है ।'

वह फिर अचेत हो गयी ।

पुश्किन की कहानी का अन्त यहाँ नहीं हुआ । लेकिन नारायण के विचार में इसे यहीं समाप्त हो जाना चाहिए था । दुल्हन का नकली दुल्हा को मुँह न चूमने देना ही इस कहानी का क्लाईमैक्स था । जब उसने कहानी पड़ी थी तब भी उसने ऐसा ही सोचा था और अब भी सोच रहा था । क्योंकि इस प्रकार हीरो के साथ इन्साफ हो जाता था और हीरो के साथ इन्साफ का मतलब उसके अपने साथ इन्साफ

हुआ जान पड़ता था । हर एक पाठक हीरो के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व की प्रति-छवि देखता है ।

नारायण ने इस हीरो में भी अपने व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब देखा था । वह तूफान में उसके साथ बढ़ा था क्योंकि वह अपनी प्रिय वस्तु के लिए हर कठिनाई और हर मुसीबत झेलने को तैयार था । लेकिन यह वजीर जिसे इस वस्तु की तलाश नहीं थी, जो तूफान से डर कर पीछे रह गया था, दुल्हा बना हुआ था । किन्तु आजादी की दुल्हन ने नकली दुल्हा को पहचान लिया था जब वह मुंह चूमने लगा तो वह बोल उठी—

'नहीं, नहीं ! यह वह आदमी नहीं है ।

आजादी रूपी रमणी बेहोश पड़ी थी ।

विचार सुन्दर और उपयुक्त था । नारायण मुस्करा दिया क्योंकि रमणी ने नकली दुल्हा को अवज्ञा से ठुकरा दिया था । उसने जेब में हाथ डाल कर वह सिफारिशी खत निकाला जिसे इस विचार से सुरक्षित रख छोड़ा था कि एक मंत्री का पत्र है शायद किसी दूसरी जगह काम आए । लेकिन अब उसकी दृष्टि में इस पत्र का तनिक भी मूल्य नहीं । महज़ कागज का पुर्जा था ।

नारायण ने एक नजर सरकारी मुहर लगे हुए इस कागज पर डाली और फिर उसे फाड़ते हुए बड़बड़ाने लगा—

'तुम्हारे ईश्वर ने मुझे कामयाब नहीं बनाया । मैंने आत्मा का सौदा करना चाहा था । कीमत भी कुछ अधिक नहीं मांगी थी । अच्छा हुआ सौदा नहीं पटा; उन्हें अपने मतलब का आदमी मिल गया मेरी आत्मा मेरे पास सुरक्षित रही । इसमें कुछ मलीनता अवश्य आ गयी है जिसे मैं संघर्ष की गर्मी से पिघला दूंगा ।'

वह बड़बड़ा रहा था और कागज को फाड़ रहा था । आखिर उसे टुकड़े-टुकड़े करके हवा में फेंक दिया और फेंक कर मुस्कराने लगा,

मुस्कराता रहा, जैसे उसके मन से मनों बोझ उतर गया हो, जैसे इतने दिनों की उदासी और परेशानी का कारण कागज का यही एक पुर्जा हो, जैसे उसने इस कागज को फाड़ कर सुबह और शाम के कोनों को परस्पर मिलने से बचा लिया हो, उनमें विशेष अन्तर उत्पन्न कर दिया हो ।

बच्चे खेल रहे थे । लड़का पैडल मार कर साईकिल को आगे बढ़ा रहा था ।उसने सन्तुलन का ढँग सीख लिया था; लड़कियाँ घूम रही थीं । अन्धेरे के कारण वे स्पष्ट दीख नहीं पड़ती थीं ।

नारायण हिलती हुई चोटियों की कल्पना कर रहा था । सुन्दर लड़की का सिर अब भी हिल रहा था और वह अपनी मुस्कराहट से इस शाम को मनोहर और आकर्षक बना रही थी ।

नारायण की आत्मा में एक जज़बा थरथरा रहा था । यह वही जज़बा था जो उसने अपनी कविता द्वारा व्यक्त किया था । और उसे वह कविता याद आ रही थी ।

समय क्षण-क्षण आगे बढ़ता है ।
जमाना हर रोज नया रंग बदलता है ।
फिर मेरी कहानी अधूरी क्यों रहे ?

नहीं यह कहानी अधूरी नहीं रहेगी । सदियों का विकास इस की दलील है ।

वह आदमी मंत्री भले ही बन गया था । लेकिन उसने इस कविता को न कभी समझा था और न समझेगा ।

लेकिन नारायण इसका रचयिता था । विकास का अटल सिद्धांत अब भी उसकी आत्मा को गुदगुदा रहा था ।

वह बड़ी देर तक सोचता रहा ।

आखिर जब वह जाने के लिए उठा तो बच्चे, साईकिल वाला लड़का और वे लड़कियाँ जा चुकी थीं । न सुबह थी न शाम; चार

तरफ अन्धेरा फैलता जा रहा था ।

इस अन्धेरे में वह एक सुबह देख रहा था जो बहुत ही सुहानी और खुशगवार थी, जिसमें वे तमाम सुबहें जमा हो गई थीं जिन्हें नारायण ने बेकार खोया था ।

कविता

एक बार का जिक्र है। हिमाचल पहाड की तलहटी में एक बूढ़ा किसान कल्याणदास रहता था। उसके दो बेटे थे, जो शहर की एक मिल में मजदूरी करते थे। अपने खाने से थोडा बहुत बचा कर वह उसे भेज देते थे और उसी से बूढे का गुजारा हो जाता था। उसकी जमीन मुद्दत हुई गाँव के जमींदार ने हथिया ली थी। पत्नी इसी गम में घुल-घुल कर मर गई थी और लड़कों को आजीविका कमाने के लिए शहर जाना पड़ा था। कल्याणदास अपने झोपड़े में अकेला रहता था।

एक दिन वह सुबह-सवेरे घूमने निकला तो उसे फूलों की वापी में हरी-हरी घास पर एक लडकी पड़ी हुई मिली। कल वहाँ से दुखी लोगों का काफिला गुजरा था। शायद उन्हीं में से कोई उसे यहाँ छोड़ गया हो। नन्ही-मुन्नी लड़की बहुत ही सुन्दर थी। उसका रंग-रूप मन को मोह लेता था। वह घास पर पड़ी अध-खिली कली के सदृश मुस्करा रही थी। कल्याणदास उसे उठा लाया। जिस प्रकार कन्व ऋषि ने शकुन्तला को पाला था उसी तरह वह उसकी परिवरिश करने लगा। उसने उस लड़की का नाम कविता रखा। वह उससे बहुत प्यार करता था। बच्ची को देख कर उसे अपनी पत्नी याद आ जाती जो अब इस संसार में नहीं थी। उसके देहाती गीत कानों में गूंज उठते। उसकी यह बड़ी हसरत थी कि उनके यहाँ एक बच्ची भी होती। कभी-कभी बूढ़े के लड़के भी घर आते। वे भी इस लड़की से प्यार करते और शहर से आते समय उसके लिए कोई न कोई उपहार जरूर

लाते ।

देखते-देखते लड़की जंगल की घास की तरह बढ़ने लगी और थोड़े ही दिनों में जवान हो गई । वह बूढ़े कल्याणदास से अपने बारे में और उसके बेटों के बारे में बहुत सी बातें पूछा करती । वह सोचती कि उसके भाई घर पर ही क्यों नहीं रहते ? उन्हें घर आने के लिए जल्द-जल्द छुट्टी क्यों नहीं मिलती । आते हैं तो अधिक ठहर क्यों नहीं सकते ? एक दिन उसने लड़की को बाप से खोई हुई जमीन की बातें करते भी सुन लिया था । अब वह यह भी सोचने लगी कि जमींदार ने उसकी जमीन क्यों छीन ली ? क्या वह उन्हें वापिस नहीं मिल सकती ?

लेकिन उसके सोचने से कुछ नहीं बनता था । बूढ़े के बेटे पहले से भी अधिक व्यस्त रहते थे । और अब वह गाँव में भी बहुत कम अते थे क्योंकि उन्हें बाप को पहले से अधिक पैसे भेजने होते थे । पिता और पुत्री कविता का हर तरह ख्याल रखते थे । वह उनके मन का प्यार थी । वह उनके जीवन का सुख और प्रकाश थी, वे उसे कदाचित उदासी देखना नहीं चाहते थे । बूढ़ा अतीत के दुख और कष्ट अपने मन में छिपाए रहता था । उनके बारे में कविता से कुछ नहीं कहता था । उसे वह केवल अच्छी-अच्छी कहानियाँ और पत्नी के गाये हुए गीत सुनाया करता था । कुछ गीत कविता को भी याद हो गए । और वह उन्हे प्रायः गाया करती थी । वे गीत उसके मुँह से बहुत ही भले मालूम होते थे । उसका स्वर कोयल की भाँति सरस और मधुर था । जब वह गाती तो जँगल के मूक वातावरण में जादू सा नाच उठता । और वह स्वयं संगीत की लय की भांति मधुर और सुन्दर बन जाती ।

कुछ दिनों के बाद दो नौजवान इस जंगल में आ निकले । उनमें से एक स्वस्थ, सुडौल, पर बहुत भोला था । उसका नाम जनमीत

था । दूसरा दुबला पतला और तहब चालाक था । वह अच्छे-अच्छे भड़कीले कपड़े पहनता था और मुस्करा—मुस्करा कर बातें करता था मुस्कराना, निस्संदेह, कविता को भी अच्छा लगता था, परन्तु उसकी मुस्कराहट में कुछ ऐसी बिडम्बना थी कि अकारण ही मन में उपेक्षा का भाव जाग उठता था । उसका नाम सुखमीत था ।

जनमीत और सुखमीत वहीं रहने लगे । वे दोनों कविता से प्यार करते थे और उसे अपना बना लेने की चाह करते थे । जनमीत हमेशा यह जानने की कोशिश करता कि कविता किस ढंग से सोचती है, उसे कौन सी बात अधिक पसंद है । संसार को वह किस दृष्टिकोण से देखती है । जीवन के बारे में उसकी विचार धारा क्या है, और दूसरे लोगों से उसका बर्ताव और व्यवहार कैसा है । इन सब बातों में उसका मतलब यह था कि कविता का हम-ख्याल बन कर उसे अपना जीवन-साथी बनाए और फिर वे दोनों अपना जीवन मानव-जाति का का भविष्य संवारने में व्यतीत करें ।

सुखमीत कुछ और ही ढंग का व्यक्ति था । वह अपने ही भीतर डूबा रहता और हर समय कविता को अपने ही मन की बातें सुनाया करता । ये बातें उसने किताबों में पढ़ी थीं, और बड़े यत्न से मस्तिष्क में धारण की थीं । मगर वह समझता यह था उस कि वे बातें एक दम मौलिक हैं; उसने खुद गढ़ी हैं और कोई भी व्यक्ति उसकी योग्यता का लोहा माने बिना नहीं रह सकता । वह कविता पर भी इन्हीं बातों के कारण छा जाना चाहता था ।

कविता व्यवहार कुशल लड़की थी । दूसरे व्यक्ति का मन रखना अपना धर्म समझती थी । इसलिए उसकी बातें प्रसन्नता से सुनती और कई बार आश्चर्य और उत्सुकता भी प्रकट करती जिसे सुखमीत योग्यता की दाद समझता ।...

उसने इन्हीं बातों को गीतों में पिरोया था और वह अपने इन गीतों

को बहुत ही गहरे और अनमोल समझता था । कविता की समझ में वह गीत कम ही आते थे । फिर भी वह उन्हें सुन कर ऐसे मुस्करा देती थी जैसे सब कुछ समझ गयी हो ।

धीरे-धीरे यह बात छिपी न रही कि कविता सुखमीत से कहीं अधिक जनमीत को पसंद करती है और उसे अपना जीवन साथी बनाना चाहती है । मगर सुखमीत को यह बात गवारा नहीं थी ।

एक दिन उसने कविता को स्पष्ट कह दिया कि यह असभ्य और गवांरू युवक मेरा मुकाबिला नहीं कर सकता । मैंने जितनी पुस्तकें पढ़ी हैं यह उनका नाम तक नहीं जानता । नगर के बड़े-बड़े लोगों से मेरा सम्बन्ध है । मैं जाता हूँ तो वे दौड़ कर मेरा स्वागत करते हैं । अपने सुन्दर विशाल महलों और कोठियों में आदर और सम्मान से ठहराते हैं और ऐसे-ऐसे भिखारियों को उनके दरवाजे पर फटकने का भी साहस नहीं होता । मैं नहीं चाहता कि तुम इस उजड्ड गवांर के पल्ले बंध जाओ । वह खुद टुकड़े-टुकड़े का मोहताज हैं दर-दर की ठोकरें खाता, आवारा घूमा करता हैं । मैं तुम्हें सब प्रकार से सुखी रखूंगा । रेशम पहनने को दूंगा और अच्छे-अच्छे सुन्दर मकान रहने को दूँगा । मेरी यह मनोकामना है कि तुम मेरी बन जाओ । अगर वह मेरे और तुम्हारे बीच में आया तो मैं उसे अपने मेल-मिलाप के बड़े आदमियों से कह कर जेल में डलवा दूँगा ।

कविता को रेशमी कपड़ों और अच्छे मकानों की चाह नहीं थी । वह जनमीत के साथ किसी भी दशा में सुखी रह सकती थी । सुखमीत की सारी तड़क-भड़क के मुकाबले में जनमीत का भोलापन उसे अधिक प्रिय था । जब सुखमीत ने जलमीत से स्पर्द्धा और ईर्षा प्रकट की और उसे जेल में भिजवाने की धमकी दी तो कविता सहम गई । वह बड़े आदमियों के अन्याय और अत्याचार से परिचित थी । उन्होंने कल्याणदास की जमीन छीन ली थी । मेहनती किसान को भिखारी

और निकम्मा बना दिया था, और ये बड़े आदमी उसके भाईयों से गुलामी करवा रहे थे । उनसे काम अधिक लेते थे और मजूरी कम देते थे । उन्हें आराम करने और छुट्टी मनाने के लिए भी समय नहीं मिलता था । ऐसे लोगों में दया नहीं होती । वे कोई भी अन्याय निस्सँकोच कर सकते हैं । सुखमीत यदि उनका आदमी है तो वे उसके कहने पर जनमीत को कैद भी कर सकते हैं ।

कविता इस विचार से कांप गई । वह सुखमीत के चँगुल से बचने और जनमीत के साथ सुख से जीवन बिताने की बात सोचने लगी ।

एक दिन वह वहाँ से एकाएकी गायब हो गई । बूढ़े बाप से भी कुछ नहीं कहा ।

कल्याणदास उसे देख कर सारा दुःख-दर्द भूल जाता था । अब उसके यों अकस्मात चले जाने से वह बहुत हैरान हुआ, परन्तु वह बुद्धिमान व्यक्ति था, जमाने का सर्द-गर्म देखे हुए था । जब से जनमीत यहां आकर रहने लगे थे; चुपचाप सारे हालात को देखता रहा था । वह भी जनमीत से प्यार करता था और इस बात से बहुत प्रसन्न था कि कविता भी उसे चाहती है । वह यह भी जानता था कि सुखमीत जबरदस्ती कविता को अपना बना लेना चाहता है । चुनाचे उसे यह बात समझने में कुछ भी देर नहीं लगी कि कविता इस अवांछनीय व्यक्ति से पिंड छुड़ाने के लिए ही एकाएकी गायब हुई है । वरना वह इतनी मूर्ख नहीं है कि जो लोग इतनी मेहनत से परवरिश करते हैं और उसे प्राणों से प्रिय समझते हैं, वह उन्हें छोड़ कर किसी दूसरी जग चली जाए और फिर उन्हें सदा के लिए भूल जाए ।

बूढ़े कल्याणदास ने जनमीत को परेशान देख कर कहा—

"मुमकिन है कि कविता को कोई भूत-प्रेत अथवा देव उठा कर ले गया हो । तुम दोनों में से जो कोई उसे ढूंढ कर लाएगा वह उसी की हो जाएगी ।"

वे दोनों कविता की तलाश में चल पड़े ।

सुखमीत कविता के साथ सदा चांद, सितारों, उषा, इंद्रधनुष और फूलों की बातें किया करता था । एकबार उसका गीत सुनकर कविता ने कहा था—

'सितारे कितने सुन्दर और आकर्षक हैं । क्या हम सितारों में पहुँच सकते हैं ?'

अब उसने अनुमान लगाया कि वह उषा और फूलों के रास्ते सितारों की बस्ती की ओर गई होगी । चुनाचे उसने सुन्दर घाटियों, उषा और सितारों में उसकी तलाश शुरू की । ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह क्षितिज के देश में पहुँच गया । यहाँ धरती और आकाश एक दूसरे को छूते थे । बादल फूलों से सरगोशियाँ करते थे । वहाँ उसे एक बहुत ही सुन्दर भवन दिखाई दिया जो हाथीदांत का बना हुआ मालूम होता था । वह बहुत ही विचित्र मकान था; उसके बारे में यह फैसला करना कठिन था कि वह धरती पर बना हुआ है या नहीं । जब मनुष्य उससे तनिक दूर जाता था तो वह बादलों के साथ ऊपर उठता हुआ दीख पड़ता था और निकट आने पर पता चलता था कि सचमुच उसकी बुनियाद धरती पर है ।

इस मकान में एक बुढ़िया रहती थी, जिसका नाम कल्पना था । उसकी उम्र का अन्दाजा सहज नहीं था; वह इतनी ही बड़ी थी जितनी यह दुनिया । वह जवान उत्पन्न हुई थी और लोग उसकी सुन्दरता पर जान देते थे । जो कोई उसे एक बार देख लेता फिर उसे उषा में, सितारों में, हर एक वस्तु में उसकी प्रतिभा दिखाई देती । बच्चे, बूढ़े और जवान सब उसे प्यार करते थे । अब उसकी उम्र ढल चुकी थी; पर उसकी सुन्दरता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी । अपने चाहने वालों को अब भी सुन्दर स्वप्नों का वरदान देती थी । उसके भवन में आकर रहने वाले हर एक महमान की खूब सेवा-सुश्रुषा

होती थीं । उसे यथा-शक्ति किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया जाता था ।

सुखमीत कल्पना के बर्ताव से बहुत प्रसन्न था । वह जीवन में अधिक मेहनत करने और कष्ट उठाने का आदी नहीं था । अब घूमते-फिरते थक गया था; सोचा कि इस सुन्दर भवन में रह कर कुछ दिन आराम करें । यहाँ रहने-सहने और खाने पीने का तो विशेष प्रबन्ध था ही; इसके अतिरिक्त इस भवन में बहुत सी पुस्तकें करीने से सजा कर रखी हुई थीं और कुछ पुस्तकें ऐसी भी थीं जिनके बारे में उसने अभी तक कुछ पढ़ा या सुना नहीं था ।

अब वह इसी भवन में रहने लगा । पुस्तकें पढ़ता और गीत लिखता, उसे अपने गीत बहुत पसंद आते । वह इन्हें पढ़ कर आप ही झूम जाता था कि उसने बहुत ही अनोखी और नई बात कही है और यह बूढ़ी कल्पना की देन है कि उसके गीत इतने मनमोहक हो गए हैं ।

वह चिरकाल तक वहीं रहता और गीत लिखता रहा ।

जनमीत ने कविता को निकट से देखने का प्रयत्न किया था । इसलिए वह जानता था कि कविता किसानों और उनके खुले खेतों से प्यार करती है । उसे मजूर और मेहनतकश जनता पसंद है । इस लिए वह गांव-गांव घूमकर किसानों के झोपडों में उसकी खोज करने लगा । इन दिनों किसान बड़े कष्ट में थे । सरकार ने हुक्म निकाला था कि उन्होंने जितना अनाज उत्पन्न किया है, उनमें से थोड़ा सा अपने पास रखकर बाकी सब सरकार को दे दें । सरकारी अफसर और कर्मचारी किसानों को हमेशा तंग करते रहते थे । अब उन्हें तंग करने का विशेष बहाना मिल गया । वे पुलिस और फौज लेकर गांव में आते और किसानों से तमाम अनाज छीनकर ले जाते । खाने तक को उनके पास नहीं रहने देते थे । जुल्म की हद यह थी कि सिर्फ़ गरीब किसानों के साथ ही ऐसा बर्ताव होता था । धनी किसानों

और बड़े बड़े जमींदारों को कोई पूछता भी नहीं था, क्योंकि सरकार के मंत्रियों तक से उनकी जान-पहचान थी । अफ़सर और कर्मचारी तो क्या, वे पैसे के जोर से चिड़िया का दूध तक खरीद सकते थे । उनके पास अनाज के कोठे भरे पडे थे; पर मजाल है कि कोई आँख उठाकर भी देख जाए ।

गरीब किसान सरकार के इस व्यवहार से बहुत दुखी थे । उन्होंने अपने पडोस में एक भयंकर अकाल देखा था, जिसमें उनके भाई लाखों की तादाद में तड़प-तड़प कर मर गए थे । उन्हें अनाज का एक दाना तक मयस्सर नहीं हुआ था । मगर धनी किसानों और जमींदारों के पास अनाज की कमी नहीं थी । उसे महंगे भाव बेचकर उन्होंने लाखों कमाये और मुठ्ठी भर अनाज के बदले जवान बहू-बेटियों की इस्मतें खरीदीं । वे अपने यहाँ यह कहानी दोहराना नहीं चाहते थे । इसलिए वे सरकार की इस योजना के विरुद्ध लड़ रहे थे । अनाज की लड़ाई उनके लिए जीवन रक्षा की लड़ाई थी ।

जनमीत किसानों का साहस देखकर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने कविता से जो पहाड़ी गीत सुने थे, उनमें से एक गीत में किसी देहाती सूरमा की कहानी बयान की गई थी, जिसमें बताया गया था कि गाँव की इज्जत के लिए लड़ना उनकी मर्यादा में शामिल है । वीरता उनकी घुट्टी में पड़ी है । वे पूर्वजों की इस परम्परा को अपने खून से सींचते रहेंगें ।

जनमीत ने यह गीत उन्हें सुनाया और इस ढंग के और उनकी अपनी भाषा में कई सुन्दर गीत नये लिखे, जिनसे बहादुर किसानों के हौसले कई गुना बढ़ गए । उनकी लड़ाई तेज हो गई । अन्त में सरकार को जबरदस्ती अनाज प्राप्त करने की योजना का त्याग करना पड़ा ।

इसके बाद वह आगे बढ़ा और नगर में पहुँचा तो मालूम हुआ कि

वहाँ भी इसी प्रकार का संघर्ष जारी है । विद्यार्थी अपनी शिक्षा और फ़ीसों में कमी के लिए लड़ रहे हैं । मेहनतकश जनता अपनी रोजी के लिए संघर्ष कर रही है । सबसे तेज लड़ाई मिलों और कारखानों में हो रही थी । मिल-मालिक अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए जदूरों की छटनी कर रहे हैं, उनका बोनस दबा लेना चाहते हैं, कई जगहों पर कारखाने बिल्कुल बंद कर दिए हैं, जिससे हजारों मजदूर बेकार हो गए हैं; वे अपनी रोजी और जिंदगी के लिए लड़ रहे हैं ।

जनमीत मजदूरों की वीरता और साहस देख कर दँग रह गया । वे पुलिस की गोलियों की तनिक परवा न करते थे । निहत्थे होने के बावजूद जान तोड़ कर लड़ रहे थे । जनमीत ने जिस प्रकार किसान आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए गीत लिखे थे उसी प्रकार इन्हें भी गीत लिख कर दिए । थोड़े दिनों वहाँ रहने से पता चला कि उन्हें हर रोज किसी बात के लिए लड़ना पड़ता है । बिना लड़े जीना कठिन है, जब वे अपना अधिकार माँगते हैं तो उन्हें पकड़ कर जेलों में डाल दिया जाता है और गोलियों का निशाना बनाया जाता है । जनमीत ने इस लड़ाई में उनका साथ देना अपना कर्त्तव्य समझा और अपना सबकुछ भूल कर उनके साथ रहने लगा ।

किसानों और अन्य मेहनतकश वर्गों की लड़ाई भी तेज होती जा रही थी क्योंकि उनसे जीविका के साधन छिन रहे थे और उन पर नित्य नए टैक्सों का बोझ पड़ रहा था ।

जनमीत ने उनकी लड़ाई को आगे बढ़ाने और उनमें एकता स्थापित करने का काम अपने जिम्मे ले लिया । एक बार सरकार की पुलिस उसे गिरफ्तार करने आई लेकिन मजूरों और किसानों ने पुलिस का मुकाबिला करके उसे भगा दिया । उसके बाद जनमीत को गिरफ्तार करने अथवा उसकी हत्या करने के कई ढँग सोचे गए लेकिन मजदूरों और किसानों ने उन्हें असफल बना दिया ।

जनमीत उन्हें लड़ने का ढँग बताता था, उनका साहस बढ़ाता था। वह उनका अपना था। वे प्राणपन से उसकी रक्षा करते थे।

अंत में जनता ने अपनी एकता और साहस से जँग जीत लिया। बड़े आदमियों का राज्य खत्म करके अपना राज्य स्थापित कर लिया। जब वे अपनी महान जीत का उत्सव मना रहे थे तो जनमीत को कविता की याद आई। उसका चेहरा एक दम उतर सा गया; लोगों ने कारण पूछा और मालूम करके चकित रह गए—बोले !

"यह भी कोई उदास होने की बात है। वह तो हमारी बहन है; हमारे साथ खेतों पर काम करती है।"

"हमारे साथ कपड़ा बुनती है।"

वे कविता को उसके पास ले आए। दोनों एक दूसरे को देख कर बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद वह बूढ़े कल्याणदास को अपने मिलाप और जनता राज्य का शुभ समाचार सुनाने चले।

उधर सुखमीत बहुत दिनों तक कल्पना के साथ उसके जादू के महल में रहते-रहते ऊब गया।

जब बहुत धूप पड़ती तो वह महल तप जाता और ऐसा जान पड़ता जैसे कल्पना मोम की भांति पिघल जाएगी। उसमें कुछ भी प्रतिभा न रह जाती। जो कल्पना उसे कभी तितली और कभी कविता बन कर लुभाती थी, उसकी यह दुर्दशा देख कर सुखमीत परेशान हो जाता, लेकिन वह इसका कारण न समझ सकता। आखिर यह परेशानी इतनी बढ़ गई कि उसके लिए वहाँ रहना दूभर हो गया और एक दिन उसने अपने देश लौटने का निश्चय कर लिया।

कल्पना अपने भवन से किसी मेहमान को खाली नहीं लौटाती थी। वह उसकी मनोकामना पूरी करने का भरसक प्रयत्न करती थी।

उसने सुखमीत से पूछा कि बोलो तुम कौनसा उपहार पसंद करोगे ? उसने बताया था कि मैं कविता की खोज करने निकला था । यदि वह मिल जाए, तो मेरे लिए संसार में उससे सुन्दर कोई दूसरा उपहार नहीं हो सकता

कल्पता ने कहा कि तुमने उसका रूप-रँग तो मुझे बता ही रखा है, और कई बार वैसा ही बन कर तुम्हें दिखाया है । असल कविता का मिलना तो कठिन है, मैं तुम्हें एक वैसी ही कविता, एक दूसरी कविता बना दूं । तुम उसके साथ सुखी और प्रसन्न रहोगे, असल कविता के सम्पर्क में वह जाने न पाए,इस बात का ध्यान रखना । अगर कहीं असल कविता की उस पर परछाईं भी पड़ गई, तो वह मर जाएगी और मुरझा जाएगी ।

सुखमीत ने समझा कि असल कविता अब सदा के लिए खो गई है। अब उसके मिलने अथवा लौट कर आने का सवाल ही नहीं पैदा होता, इसलिए वह नकली कविता को साथ लेकर चल पड़ा । उसने सोचा कि मैं बूढ़े कल्याणदास से कहूँगा कि यह असल कविता है । मैं उसे ढूंढ लाया हूँ ।

मगर जब वह हिमाचल की तलहटी में आया, तो उसने दूसरी ओर से जनमीत को आते देखा । उसके सँग असली कविता थी । ज्योंही वे बूढ़े कल्याणदास के पास आए, असली कविता की परछाई नकली कविता पर पड़ी और वह वहीं राख का ढेर हो गई । बूढ़ा कल्याण-दास अपनी बेटी कविता को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ । अब उन्हें सुखमीत और उसके साथी बड़े आदमियों का भय नहीं रह गया था, और इधर दुनिया भी बदल गई थी ।

कविता और जनमीत का विवाह बड़ी धूमधाम से हो गया इसके बाद जनमीत का दूसरा नाम जन-कवि भी पड़ गया । लोगों में वह प्रायः इसी नाम से प्रसिद्ध है । सुखमीत ने भीउससे द्वेष छोड़ दिया और लोगों से मिल कर काम करने लगा ।

प्रतिकार

"बदला तो तुम जरूर लोगे बेटा ! लेकिन किसी बेगुनाह को मत मारना । उसी को मारना जिसने मुझे मारा है ।"

करमू छुरा तेज़ कर रहा था कि सहसा बाप के शब्द उसके जेहन में उभर आए । छुरा एक तरफ़ जा गिरा और वह सोचने लगा ।

थोड़ी देर पहले उसके दिमाग ने कोई भी माकूल बात सोचने से इन्कार कर दिया था । उसका मन दुख और विषाद से भरा हुआ था । शरीर क्रोध के मारे कांप रहा था । बाप को जख्मी हालत में दम तोड़ते देख कर वह आपे से बाहर हो गया था और उस समय से अब तक सम्भल नहीं सका था । बैठा सोच रहा था । स्वर्गीय पिता की एक एक बात याद आ रही थी और उसकी सारी जिन्दगी तस्वीर बन कर नज़रों में घूम रही थी ।

उसका बाप खुशिया दुबले पतले शरीर का बूढ़ा आदमी था । सारी उम्र मेहनत करते गुजरी । पानी की भरी हुई मशक कन्धे पर रखे वह तेज-तेज़ कदमों से चलता और गमलों में उगे हुए फूलों और पौधों को सींचता । उसने कई स्कूलों, कालेजों और कोठियों में मुलाजमत की थी और इस मुलाज़मत के कारण नाना प्रकार के व्यक्तियों से वास्ता पड़ा था । वह हर एक से कुछ न कुछ सीखता था । उसका अनुभव बढ़ता था । वह अपना काम मेहनत और होशियारी से करता था, इसलिए किसी को शिकायत की गुंजाईश पैदा नहीं होती थी । हेड-मास्टरों, प्रोफेसरों और कोठी के मालिकों की उसके बारे में एक ही राय थी—

'खुशिया नेक आदमी है ।' और यह राय एक बार बनकर कभी बदली नहीं थी ।

करमू जब बाप के बारे में लोगों की यह राय सुनता तो उसका सिर गर्व से ऊँचा उठ जाता और वह भी मन ही मन बाप की तरह नेक बनने का संकल्प करता ।

ज़रा होशियार होते ही उसने भी बाप की तरह काम करना शुरू किया । वह भी कन्धे पर मशक रखे, फूलों और बेलों को सींचता। कुछ और बड़ा हुआ, तो एक प्राईमरी स्कूल में नौकर हो गया । जब वह पैदा हुआ, था तब उसका बाप इसी स्कूल में नौकरी करता था । वह नन्हें-नन्हें मासूम बच्चों को खेलते देखकर खुश हुआ करता था और सोचा करता था कि मेरा करमू बड़ा होगा तो मैं उसे भी स्कूल में दाखिल कराऊंगा; वह भी इन बच्चों के साथ पढ़ा करेगा, खेला करेगा और इन्हीं की तरह प्रसन्न हुआ करेगा ।

निस्संदेह स्कूल में करमू को बहुत से साथी मिल जाते, क्योंकि बच्चों में छोटे-बड़े की वर्ग -चेतना नहीं रहती, उनका मस्तिष्क मज़-हबी भेदभाव से भी मुक्त होता है । उनकी जिन्दगी तो केवल पौधों और फूलों की तरह बढ़ना और विकसित होना जानती है ।

लेकिन खुशिया का वह स्वप्न, स्वप्न ही रह गया । उसके एक के बाद एक कई बच्चे उत्पन्न हुए । उन सब के बाद पालन-पोषण का बोझ उसकी अकेली जान पर आ पड़ा । जैसे-जैसे बच्चे अधिक और बड़े हो रहे थे, खर्च बढ़ रहा था । एक आदमी के लिए सारे कुनबे का खर्च चलाना कठिन था । करमू का लड़कपन, छः बहन भाइयों को खिलाने और घर के छोटे मोटे काम करने में गुजरा । तनिक बड़ा हुआ तो मशकें उठानी शुरू कीं और घर का खर्च चलाने में बाप की सहायता करने लगा ।

वह भी बच्चों को देख कर खुश होता था। उनकी निरीहता को

आत्मा में भर कर मुस्कराता । उन्हें मुस्कराते देख कर उसे अपनी थकान भूल जाती । उसका बाप पास ही कालेज में काम करता था; छुट्टी के समय वह उसके पास जा बैठता और उसकी बातें ध्यान से सुना करता । कालेज के लड़कों को अपने गिर्द जमा देख कर खुशिया कहना शुरू करता—

"राम रहीम सब एक हैं ।"

"इन्सान, इन्सान की दारू है । एक दूसरे की मदद करना इंसान का फर्ज है ।"

"पौधों को हम जितना सींचते हैं वे उतना ही बढ़ते हैं । आदमी जितनी मेहनत करता है उतना ही नेक बनता है ।"

वह ऐसी और इस प्रकार की बातें करता जो उसने अपने अनुभव से सीखीं थीं, प्रोफेसरों और दूसरे विद्वानों से सुनी थी । बातें करते समय उसकी आँखों में अलौकिक प्रतिभा चमक उठती थी जो उसकी सरलता और सहृदयता की सूचक थी । यही कारण था कि लड़के उसकी बातें शौक से सुनते थे और कभी किसी की यह हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उसके कहे का मजाक उड़ाए ।

जब लड़के अपनी-अपनी क्लासों में पढ़ा करते थे और खुशिया के पास कोई काम न होता तो वह सड़क पर आ जाता; राह चलते लोगों को ठहरा लेता और उनसे बातें करता—

"राम-रहीम सब एक हैं ।"

"इन्सान, इन्सान की दारू है......"

भले लोग उसकी बातें ध्यान से सुनते और और अपनी आत्मा में अनबूझ प्रसन्नता भर कर मुस्कराते हुए चले जाते ।

एक बार मनोविज्ञान के किसी पण्डित ने उसे अपरचित लोगों से इस प्रकार की बातें करते हुए देख कर कहा था कि वह अफ़ीम खाता है और अफीम के नशे में जो जी में आता है, कहे जाता है । लेकिन

दरियाफ्त करने पर उसका अनुमान मिथ्या सिद्ध हुआ । खुशिया को सिर्फ़ अच्छी बातें दिमाग में रखने और अवकाश मिलने पर उन्हें कहने का नशा था । वरना उसने आजीवन अफ़ीम का प्रयोग नहीं किया ।

खुशिया खुद नेक था; अपने लड़के करमू को नेक बनाना चाहता था और दुनिया में नेकी को फलते-फूलते देखना चाहता था । उसकी इस साधना का पता, उस समय अच्छी तरह चल गया जब फिसाद शुरू हुए, जब इन्सान, इन्सान की दारू न रह कर बैरी बन गया; जब भाई-भाई का गला काटने लगा ।

वह चंगड़ मोहल्ले में रहता था जहाँ हिन्दुओं और मुसलमानों की मिली जुली आबादी थी । लोगों ने फौरन खतरे को महसूस किया । सब एक जगह एकत्रित हुए और आपस के सलाह-मशविरा से अमन-कमेटी स्थापित करली । इस कमेटी के सदस्य मुहल्ले के प्रमुख व्यक्ति-यों को बनाया गया था, डाक्टरों और वकीलों को, बड़े-बड़े व्या-पारियों को । लेकिन कमेटी बन जाने की सबसे अधिक खुशी खुशिया को हुई थी । इसकी स्थापना में उसने भरसक सहयोग दिया । वह इधर-उधर भागता फिरा था और भरी सभा में उपस्थित जनों को सम्बोधित करते हुए कहा था—

'राम रहीम सब एक हैं ।'

'इन्सान, इन्सान की दारू है । एक दूसरे की मदद करना आदमी का फर्ज़ है ।'

जब कमेटी बन गई तो वह समझता था कि इसकी नींव उसके मन की सद्भावना पर टिकी है, इसके बनाने में उसका प्रयत्न अधिक उपयोगी हुआ है । शायद यह बात इस हद तक सच न हो । लेकिन इतना तो जरूर हुआ कि जब शहर साम्प्रदायिक दंगे की आग में जल रहा था तो चंगड़ महल्ले की छोटी सी बस्ती हिन्दू-मुस्लिम एकता की मिसाल पेश कर रही थी । न वहाँ पड़ोसी-पड़ोसी का दुश्मन बना

और न किसी ने एक दूसरे के घर में आग लगाने की कोशिश की । हाँ, करफ्यू और बेरोजगारी की मुसीबत से ये लोग भी न बच सके ।

कर्फ्यू खत्म होते ही खुशिया घर से बाहर निकलता । वह हिन्दू मुहल्लों में से भी बिना खटके के गुजर जाता । उसके नजदीक इन्सान, इन्सान में भेद नहीं था । वह लोगों को लड़ते देख कर दुखी होता और अपनी अमन-कमेटी का जिक्र करते हुए बड़े गर्व से कहता, ।

'क्या हिन्दू, क्या मुसलमान हम सब इकट्ठे रहते हैं । किसी से किसी की दुश्मनी नहीं ।"

और फिर छाती ठोंक कर और आंखों में प्रतिभा भर कर वह कहना जारी रखता—

"हमारी गली में हिन्दुओं के चार घर हैं" । वे डर कर जाने लगे तो मैंने कहा—"डरो मत, हम तुम्हारी हिफाजत करेंगें ।"...

दंगे से साधारण जनता उसकी बातें दिलचस्पी से सुनती और कुछ लोग उसकी बात में बात मिला कर कहते—

"यह सब खुदगर्ज लोगों का खेल है । वे अपनी खाल बचाने के लिए गरीब लोगों को लड़ा रहे हैं ।"

इस प्रकार अपनी कहते और दूसरी की सुनते, खुशिया के ज्ञान में वृद्धि होने लगी और उसकी बातचीत दिन-दिन स्पष्ट और सर्तक होती गई । उसे हर रोज आप ही आप नयी बातें सूझने लगीं, और इस के अतिक्ति दूसरे लोग जो पते की बात कहते वह उसे भी मस्तिष्क में सुरक्षित रख लेता और किसी दूसरे अवसर पर ऐसे दोहराता जैसे उस के अपने दिमाग की उपज हो । इसी सिलसिले में वह कहता सुना गया:—

"लोग धड़ाधड़ मर रहे हैं । हुकूमत के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती । अगर एक अंग्रेज मारा जाता तो सारी गड़बड़ एक मिनट में बन्द हो जाती ।"

और कुछ दिन के बाद वह यह शब्द बड़े दुःख के साथ कह रहा था—"गरीब आदमी की हर तरह शामत है । काम पर जाय तो मारा जाता है । काम पर न जाए तो भूख से मरता है । अमीर आदमी के पास तो जमा रहता है । गरीब आदमी रोज कुंआ खोदता है रोज पानी पीता है । वह मेहनत मजदूरी न करे तो खाये कहाँ से ?"

खुशिया की बातें निराधार नहीं थीं । जो कुछ उसकी आँखों के सामने मानवता पर बीत रही थी वही वह ज़बान से कहता था । उस ने लोगों को भूख से कराहते और तड़पते देखा और बिना मौत मरते देखा था । उससे यह सब कुछ सहन नहीं होता था । अगर ज़रा भी उसके वश की बात होती तो वह चंगड मुहल्ले सी अमन-कमेटियाँ तमाम शहर और सारे हिन्दुस्तान में बना कर दम लेता ।

उस रोज़ खुशिया ने एक लाश देखी जिसे पुलिस वाले कुएँ से निकाल कर लाए थे । वह पन्द्रह बीस दिन से वहीं पड़ी सड़ रही थी, फूल कर कुप्पा हो गई थी । हाथ-पांव मन-मन के हो चुके थे । चेहरा इतना बिगड़ गया था कि आंख, नाक और कान बिलकुल नज़र नहीं आते थे । सिर्फ इतना मालूम होता था कि इन्सान की लाश है । हिन्दू, मुसलमान की तमीज मुमकिन नहीं थी । उसे देखकर खुशिया का मन दया और करुणा से भर गया । वह स्तब्ध खड़ा अपने आपसे पूछता रहा—

"कोई अजनबी होगा जो इतने दिन कुएँ में पड़ा रहा । उसने किसी का क्या बिगाड़ा था ? उसकी किसी से क्या दुश्मनी थी ? बेगुनाह मारे जा रहे हैं ।"

इसके बाद जब कभी दंगे के बारे में बातचीत होती तो खुशिया की नज़रों में यह लाश घूम जाती जो सूजकर कुप्पा बन चुकी थी और जिसमें हिन्दू और मुसलमान का भेद बाकी नहीं रहा था । वह दया और करुणा से भरकर झट बोल उठता—

"बेगुनाह मारे जा रहे हैं । मारने वालों से कोई पूछता भी नहीं ।"

एक दिन सरकारी सूचना-विभाग के चपरासी भोलूराम को दो गुंडों ने आ पकड़ा और जल्दी-जल्दी उसके शरीर पर छुरों से कई प्रहार किए । इत्तफ़ाक से खुशिया घटनास्थल पर पहुँच गया और उसकी ललकार सुनकर गुन्डे भाग गए । उसने भोलूराम को सम्भाला । वह सूचना-विभाग के दफ्तर के सामने वाली कोठी में काम कर चुका था, इसलिए भोलूराम को मुद्दत से जानता था । जब कभी राह चलते भेंट हो जाती थी तो दंगों के सम्बन्ध में—इन्सान के इस पागलपन के बारे में उससे बातें किया करता था और वह अच्छी तरह जानता था कि भोलूराम के मन में किसी के प्रति रत्ती भर भी विद्वेष नहीं । वह बेगुनाह है । लेकिन आज उसी पर घातक आक्रमण हुआ था है और उसके घावों से खून बह रहा है—निर्दोष व्यक्ति का शुद्ध और पवित्र खून !

खुशिया ने इस खून को रोकने की कोशिश की । अपनी कमर का पटका खोलकर जख्मों पर बाँधा । लेकिन एकदम चार जख्म थे, खून बन्द ही नहीं होता था । खुशिया के हाथ भर गए । इन्सान का खून इस प्रकार अकारण और व्यर्थ बहते देख कर उसका दिल डूबा जा रहा था, बर्बरता पर रो रहा था । थोड़ी देर में कुछ और लोग भी जमा हो गए और भोलूराम से पूछने लगे—

'तुम हिन्दू हो या मुसलमान ?"

भोलूराम के माथे पर अभी तक बल नहीं पड़ा था । वह बदस्तूर मुस्करा रहा था । लेकिन यह बात सुनकर उसके चेहरे का रंग एकदम फीका पड़ गया और होठों पर की मुस्कराहट नष्ट हो गई । निस्सन्देह घावों से अधिक उसे इस प्रश्न ने पीड़ित किया था । उसे साम्प्रदायिकता के विष में सनी सहानुभूति की बजाय इन्सानी हमदर्दी की

तलाश थी और वह खुशिया से मिल गई थी । उसने दूसरे ही क्षण सम्भल कर धीरज से कहा—

"क्या हिन्दू, क्या मुसलमान ! वे भी जमीन ही पर रहते हैं, हम भी जमीन पर रहते हैं । इन्सान ने इन्सान को मारा है ।"

घायल व्यक्ति के मुंह से यह शब्द सुनकर दिलों के मैल धुल गए । सबने उसकी हिम्मत की दाद दी । इसी बीच में सूचना-विभाग का इन्चार्ज अफसर—जो मुसलमान था मोटर लेकर वहाँ आ पहुँचा । दूसरे लोगों की सहायता से उसने भोलूराम को बड़ी सावधानी से मोटर में लिटाया और अस्पताल ले गया ।

खुशिया भी मोटर के पीछे-पीछे अस्पताल गया । वह यह जानना चाहता था कि भोलूराम के जख्म अच्छे हो जायेंगे; वह जीवित भी रहेगा ? डाक्टर के आश्वासन दिलाने पर भी उसकी तसल्ली नहीं हुई । जितनी देर जख्मों को धोया गया, उन पर टाँके लगाए गए, वह चुपचाप खड़ा देखता रहा । सांस तक रोकने की कोशिश की, कि कहीं डाक्टर के काम में बाधा न पड़ जाए । जब जख्म सिल गए, खून बन्द हुआ और भोलूराम के शरीर में नया खून दाखिल कर दिया गया तो इत्मीनान से घर लौटा ।

उस रात वह बहुत कम सो सका । सोते-जागते भोलूराम का मासूम चेहरा उसकी नजरों में घूमता रहा । और उसके यह शब्द—

"क्या हिन्दू, क्या मुसलमान ! वे भी जमीन पर रहते हैं, हम भी जमीन पर रहते हैं । इन्सान ने इन्सान को मारा है ।" उसके कानों में गूंजते रहे ।

सुबह जब वह काम पर गया तो उसने भोलूराम पर गुन्डों के आक्रमण का जिक्र एक-एक से किया । जख्मों से खून बहने और उसे बन्द करने की कहानी विस्तार से सुनाई । सारी बात कह चुकने के बाद अन्त में यह वाक्य बड़े ही गर्व से दोहराता—

"क्या हिन्दू, क्या मुसलमान । इन्सान ने इन्सान को मारा है ।"

शायद वह समझता था कि इन शब्दों को प्रसारित करने से फिसाद रुक जाएगा ।

अब खुशिया का यह नियम बन गया कि वह हर रोज अस्पताल में भोलूराम की खबर लेने जाता । उसके जख्म भरते देख कर खुश होता अस्पताल के लम्बे कमरे में फिसाद के दूसरे जख्मी भी पड़े थे । उनकी तादाद साठ सत्तर से कम नहीं थी ।

"क्या तुम भीड़ में लड़ने गए थे ?"

भोलूराम के बांई ओर जो जख्मी पड़ा था, खुशिया ने उससे पूछा–

"मैं क्या लड़ने जाता । मेरे तो बाप-दादा ने भी लड़ाई नहीं की ।"

वह बोला और कुंठित ध्वनि में आगे कहा—

"काम से लौट रहा था, घिर गया ।"

वह ठिगने कद का आदमी था । सिर पर जख्म आया था, इसलिए पट्टी बँधी हुई थी । चेहरा सूख कर जरा सा निकल आया था । आँखों में दुःख, पीड़ा और विषाद भरा था । किसी गहरी चिन्ता में डूबा हुआ मालूम होता था । शायद बीबी-बच्चों की सोच रहा था ।

"घर का खर्च अब कैसे चलता होगा ?"

सामने साईकिल मरम्मत करने वाले एक मिस्त्री की चारपाई थी । उसके दाएँ हाथ का अँगुठा कट गया था और उसे रंज था कि वह अब रोज़ी कैसे कमाएगा । वह सोचता, इससे तो अच्छा था कि मेरी गर्दन कट जाती और मैं मर जाता । किसी प्रकार का ग़म तो नहीं रहता ।

फ़िसाद के जख्मी इसी प्रकार के लोग थे । कोई मजदूर, कोई खोमचे वाला । न वे पाकिस्तान के पक्षपाती थे, न अखण्ड हिन्दु-

स्तान के । वे सब बेगुनाह थे और गुँडागर्दी का शिकार हुए थे । खुशिया उनकी बातें सुनता और समवेदना से सिर हिला कर कहता—

"बेगुनाह मारे जा रहे हैं । मारने वालों को कोई पूछता भी नहीं ।"

करमू को बाप की ये बातें अच्छी लगती थीं । हर एक भले आदमी को अच्छी लगती थीं । क्योंकि हर एक भला आदमी चाहता था कि फिसाद बन्द हो जाए । और अधिकांश लोग भले ही थे । लेकिन उनकी सदिच्छाओं के बावजूद फिसाद न रुकता था । दो चार दिन शांति रहती, फिर कहीं अचानक बम फटता । कुछ लोग मारे जाते, कुछ जख्मी होते । हर तरफ आतंक छा जाता, छुरेबाजी शुरू हो जाती और मकान धांय-धांय जलते...

फिसाद क्यों कर बन्द होते ? हिन्दू और मुसलमान अपने सम्प्रदाय के हताहतों से विरोधी सम्प्रदाय के हताहतों की संख्या बढ़ाने में लगे थे । अपराधी और निरपराधी से कोई मतलब नहीं । सुबह एक सम्प्रदाय के जितने आदमी मारे गए ।

शाम तक दूसरे सम्प्रदाय के उनसे अधिक लोगों को मार लेना धर्म समझा जाता था । बेगुनाहों की जान लेना, बदला शुमार होता था और जान लेने वालों की पीठ ठोकी जाती थी । गुँडे, कौम के रक्षक बने हुए थे, मान और आदर से देखे जाते थे । खुशिया का बुढ़ापा दुनिया के इस उलटे चालचलन को देख कर चकित रह गया । अच्छे भले आदमी इस रौ में बहे जा रहे थे; मगर उसका ईमान अचल और अडिग था । अब भी उसकी पवित्र आत्मा सुदृढ़ स्वर से कह उठती थी—

"यह भी कोई बदला है ? बेगुनाह मारे जा रहे हैं और मारने वाले बेखौफ घूम रहे हैं ।"

और जब बेगुनाहों की कल्पना करता तो भोलूराम का मासूम

चेहरा फौरन उसकी नजरों में घूम जाता। वह देखता कि उसके जख्मों से खून बह रहा है। मगर उसके माथे पर बल नहीं पड़ा। वह मुस्करा रहा है—

"इन्सान ने इन्सान का खून किया है।"

वह इन्हीं शब्दों का फिजा में गुँजन सुन रहा था। दिन डूबने वाला था; थोड़ी देर पहले वह काम से लौटा था। वह मशक रखकर और अपने सबसे छोटे बच्चे का मुँह चूम कर घर से निकला था। भोलूराम की खबर लेने अस्पताल की ओर जा रहा था। जब वह अपने मुहल्ले से गुजर कर मोड़ पर से घूमने लगा तो बगल की गली से एक व्यक्ति हवा की तरह निकला और खुशिया को यह मालम भी नहीं होने पाया कि उसने अपने हाथ का छुरा कब उसके पेट में घोप दिया। वह एक आह भर कर जमीन पर गिर पड़ा और आक्रमणकारी भाग गया; गली में छिप गया। किसी को मालूम नहीं हो सका कि वह कौन था ?

राह चलते लोग जमा हो गए। इस दुर्घटना की खबर जँगल की आग की तरह सारे मुहल्ले में फैल गई। मुहल्ले के लोग आए, करमू भी आया।

खुशिया का बुरा हाल था। पेट की नसें कट गई थीं। खन ऐसे बह रहा था जैसे भीतर से कोई सोता फूट निकला हो। बचने की कोई उम्मीद न थी।

बाप की यह दशा देख कर करमू आपे से बाहर हो गया। उसने लोगों को मरते देखा था। एक इन्सान के नाते उनके दुःख को महसूस किया था। मगर वह दुनिया की तरह पागल नहीं हुआ थ,, उसका ईमान बाप के ईमान की तरह अचल और अडिग था। वह बेगुनाहों के खून से अपने हाथ रंगना नहीं चाहता था।

मगर अब उसके सिर पर बज्र गिरा था। जिस बाप ने प्यार से

और मोहब्बत से उसे पाला पोसा था और जिसने खुद मुसीबतें झेलते हुए हमेशा उसने सुख की कल्पना की थी, वह उसकी नजरों के सामने निरपराध मर रहा था । वह इस चोट को सहन न कर सका; बाप का खून बहते देख कर उसकी आँखें सुर्ख हो गयीं और क्रोध से कांपते हुए होंठों से बोला—

"अगर इस खून का बदला न लूँ तो मैं भी अपने बाप का बेटा नहीं ।"

खुशिया को मालूम था कि वह अब जी न सकेगा । जीवन-शक्ति रक्त बन कर जमीन पर बह रही, मिट्टी में मिल रही थी । दिल प्रति-क्षण डूब रहा था; लेकिन उसकी मुद्रा शांत और गम्भीर थी । वह चुप, लोगों की बातें सुन रहा था । करमू ने जब बदले की बात कही तो वह चुप न रह सका । उसके होंठ हिले और वह कमजोर आवाज में बोला—

"बदला तो तुम जरूर लोगे बेटा; लेकिन किसी बेगुनाह को मत मारना । उसी से लेना जिसने मुझे मारा है ।"

और वह आवाज हमेशा के लिए बंद हो गई । क्रोध की आग से करमू का अङ्ग-अङ्ग जल रहा था । जब से बाप को दफना कर लौटा था, वह छुरा तेज करने में लगा था । जब तक वह बाप की हत्या का बदला नहीं लेगा तब तक उसके हृदय की जलन शांत न होगी । छुरे की धार तेज हो रही थी और बाप की शक्ल उसकी आंखों में घूम रही थी । छुरा तेज होता रहा और शक्ल घूमती रही । धीरे-धीरे उसका चोट से सुन्न मस्तिष्क सजग होता गया । सहसा प्यारे बाप की प्यारी बातें याद हो आईं । बातें याद आती गईं, उसका दिल गम से भरता गया, नर्म होता और पिघलता गया—

"बेगुनाह मर रहे हैं, इन्सान ने इन्सान को मारा है ।"

करमू का हाथ एक दम रुक गया । आँखें ऊपर उठाई तो उसे लगा जैसे उसका बाप सामने खड़ा है और मधुर तथा सुदृढ़ स्वर में कह रहा है—

"बदला तो तुम जरूर लोगे बेटा ! लेकिन किसी बेगुनाह को मत मारना । ऊसी से लेना जिसने मुझे मारा है ।"

छुरा एक तरफ को जा गिरा और वह शांत भाव से सोचने लगा था ।

रेल का डिब्बा

मैं और मेरा दोस्त हीरानन्द लखनऊ से दिल्ली आ रहे थे। थर्ड क्लास का डिब्बा मुसाफिरों से खचाखच भरा हुआ था। कहीं तिल रखने को जगह नहीं थी। फिर भी बाहर से नये मुसाफिर भीतर आने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे और दरवाजे पर बैठा काला-कलूटा, नंग-धड़ंग एक व्यक्ति खाकी फौजी टोपी पिस्तौल की तरह हाथ में लहराते हुए लोगों से लड़-झगड़ रहा था और अन्दर आने से सभी को रोक रहा था।

डिब्बे में बिल्कुल गुन्जायश नहीं थी। किसी नये आदमी के भीतर आने पर डिब्बे में भरे हुए आदमियों को और भी सिमटना पड़ता था लेकिन जब कोई व्यक्ति उस फौजी से लड़-झगड़ कर जबर्दस्ती अन्दर आ घुसता था तो दुःखी होने के बजाय लोग खुश होते थे। फ़ौजी को पराजित और अप्रतिभ देखकर हीरानन्द तो एकदम हँस पड़ता था और दोहरा देता था—'किराये पर...'

गाड़ी में दाखिल होते समय फ़ौजी ने हमें भी रोका था। दर-वाजा बन्द था उसे खोलना मुमकिन नहीं था। जब कोई खिड़की में से घुसने की कोशिश करता था तो फ़ौजी उसे पीछे धकेलता था। लेकिन हीरानन्द तगड़ा और लड़ाकू आदमी था। वह कब रुकने वाला था।

हीरानन्द ने उसकी एक न चलने दी। उसने फ़ौजी को धक्का दिया और उचक कर भीतर जा घुसा। वह गिरते-गिरते बचा और बड़बड़ करता रहा लेकिन जब तक बांह पकड़ कर मुझे भी अपने पीछे

न खींच लिया तब तक हीरानन्द कुछ नहीं बोला । काम बनाने से मतलब था, लड़ने से नहीं । लेकिन जब हमारे भीतर आने के बाद भी फ़ौजी चिल्लाता ही रहा, तो हीरानन्द गरज कर बोला—

'अरे तू कौन होता है रोकने वाला, तेरे बाप की गाड़ी है ।'

'हां हम रोक सकता है, —फ़ौजी; जिसने निकर के अतिरिक्त और सब कपड़े उतार कर रख दिए थे, अपनी ख़ाकी टोपी हवा में लहराई, जैसे हमें बताना चाहता हो कि मैं सैनिक हूँ, देश का सेवक हूँ । टोपी हमें भलीभाँति दिखा देने के बाद फिर बोला—

'हमने जान हथेली पर रख ली है ।'

'अच्छा तो बैठ जाओ, हम पर क्या रोब गांठते हो । जान देना हम तुमसे अधिक जानते हैं ।' हीरानन्द, जो तीन-चार मरतबा जेल काट चुका था, बोला ।

लेकिन फ़ौजी बैठा नहीं, तन कर खड़ा रहा । इससे पहले की वह हीरानन्द की बात का कोई जवाब देता मैंने दूसरी ओर से आक्रमण किया,—

'जान दी नहीं, किराये पर ली है क्योंकि पैसे जो लेते हो ।'

उसने घूर कर मेरी ओर देखा—'किराये पर ली है !' हीरानन्द ने व्यंग से दोहराया और ठहाका मार कर हँस पड़ा ।

गाड़ी में बैठे और चार पाँच मुसाफिर भी हँस पड़े । फ़ौजी भी हतबुद्धि-सा अपनी जगह पर बैठ गया ।

जब वह लड़ते-लड़ते हार जाता, तो जुबान तो रुक जाती लेकिन उसका शरीर और भी तन जाता, छाती पहले से अधिक फूल जाती, मुँह तनिक खुल जाता और वह अपना हाथ सीट पर फैला देता, जिसे उसने अपने किसी बाहर घूम रहे साथी के लिए सुरक्षित रख छोड़ा था ।

काला तो वह था ही—धुएँ की भांति ! लेकिन जब गुस्से में

आता तो वह भयानक और कुरूप भी हो जाता था । जैसे दास-प्रथा युगीन किसी धनिक किसान ने अफ्रीका का एक हब्शी खरीद कर, उसे किसी ढंग से ठोस और निर्जीव बना कर खेत चर जाने वाले पशुओं को डराने के लिए मेंढ़ पर रख दिया हो ।

अब दूसरे मुसाफिरों ने हीरालाल के साथ मिल कर कहकहा लगाया तो हमें पता चल गया कि गाड़ी के दूसरे मुसाफिर उसे और उसके व्यवहार को पसन्द नहीं करते । यही कारण था कि उन्होंने हमारा स्वागत किया । सीट कोई खाली नहीं थी । पास बैठे नौजवान ने अपना ट्रंक हमारी तरफ़ सरका कर बैठने के लिए जगह बनायी ।

इसी प्रकार जब कोई मुसाफिर इस काले-कलूटे व्यक्ति से लड़-झगड कर भीतर आ जाता था तो डब्बे में बैठे लोग उसका स्वागत करते थे, खुद कष्ट सह कर भी उसके लिए स्थान बनाते थे । और नवागंतुक फ़ौजी को बिजयोन्मुख भाव से देख कर मुस्कराते थे ।

लेकिन फ़ौजी को इन लोगों के मुस्कराने और उपेक्षा से देखने की जरा भी परवाह नहीं थी । वह हर एक से झगड़ता और बे-तरह झगड़ता था ।

वह सिर्फ अन्दर आने वालों से ही नहीं लड़ता था बल्कि अन्दर बैठे लोगों से भी लड़ पड़ता था । वह एक दुबले पतले आदमी पर इसलिए झपट पड़ा था कि उसने देर से खड़े हुए मुसाफिर को खाली सीट की तरफ इशारा करके कह दिया था—

'इस जगह बैठ जाओ जब इसका साथी आयेगा तो उठ जाना ।'

शायद वह दुबला-पतला आदमी पिट जाता लेकिन उस वक्त एक सुडौल और तन्दुरुस्त व्यक्ति चीते की तरह लपक कर आया और उसने फ़ौजी को दस्तंदराजी से मना किया । जब फ़ौजी ने इस मना करने वाले की ओर घूर देखा तो वह दोबारा अपनी जगह पर जा बैठा और

बड़े इत्मीनान से अपनी प्रान्तीय भाषा—पंजाबी में कहा—

'आँखे फाड़ कर क्या देखता है। मैं मोटर ड्राइवर हूँ और जंग में तेरे जैसी कितनी ही लाशों को इधर से उधर ढोया है!'

'लाशों को' हीरानन्द दोहरा कर हँस पड़ा।

हीरानन्द को जो बात या जो शब्द पसन्द आ जाता था वह उसे एक बार नहीं सौ बार दोहराता था। जितनी बार दोहराता था उतनी ही बार उसे आनन्द मिलता था। यही नहीं कि वह खुद दोहराता हो बल्कि जिस व्यक्ति के मुँह से यह बात निकलती थी उसी से फिर सुनने की कोशिश करता था। शायद उसने इसीलिए ड्राइवर से नाता जोड़ना चाहा—

'क्यों भाई साहब आप पूर्वी पंजाब में रहते थे या पश्चिमी पंजाब से आए हुए हमारे जैसे रिफ्यूजी हैं?'

'जी मैं भी रिफ्यूजी हूँ।'—उसने संक्षेप में कहा।

'अब कहाँ रहते हैं?'

'गाड़ी में।'

उसके कहने के अन्दाज पर हीरानन्द हँसा और दोहराया—

'गाड़ी में।'

'और कहने को कौन-सी जगह है।'—इस बार ड्राइवर खुल गया 'इधर से उधर मारे-मारे फिरते हैं। इसीलिए दिन गाड़ी में ही गुजरते हैं।'

इसके बाद हीरानन्द ने पूछा कि वह किस जिले में रहता था, दंगे के दिनों में कैसे और कब निकल कर आया? जब बातचीत का सिलसिला जुट गया तो आखिर युद्ध में उसकी नौकरी और ड्राइवरों की बात छेड़ कर उसी स्वर पर हाथ रखा जिसे वह सुनना चाहता था—'ये लाशें ढोने की बात आपने खूब कहीं।'

'और क्या लाशें ही तो हैं।' उसने गम्भीर अवज्ञा से दोहराया।

और हीरानन्द हँस पड़ा। फिर उसने स्वयं भी दोहराया–ऊँची आवाज में ! 'लेकिन लाश' शब्द में जो व्यंग था फ़ौजी उसे नहीं समझता था। इसलिए वह जैसे 'किराये पर ली है' सुन कर चिढ़ जाता था वैसे चिढ़ा नहीं। इसलिए हीरानन्द ने भी अधिक दोहराना व्यर्थ समझा।

जब हीरानन्द ड्राइवर से मित्रता जोड़ रहा था–मैं दूसरे मुसाफिरों से परिचय प्राप्त कर रहा था। उनके चेहरों से उनका जीवन-इतिहास पढ़ता रहा और आँखों में दुःख-सुख की रेखाएँ देख कर हृदय में घुट-घुट कर मर गयीं, हसरतों का अनुभव कर रहा था।

जब गाड़ी में घुसने के लिए संघर्ष करना पड़ता है तो आदमी निश्चित बैठ कर पढ़ने की बात कैसे सोच सकता है। इसलिए कितनी लम्बी यात्रा क्यों न हो, मैं कभी कोई पुस्तक साथ लेकर नहीं चलता। पहले पहल यह बात कुछ अखरती थी। लेकिन अब यह हाल है कि अगर थर्ड क्लास के डिब्बों में फर्स्ट और सेकेंड क्लास के डिब्बों की तरह भीड़ भी रहे तो भी मैं पुस्तक पढ़ने की बजाय साथी मुसाफिरों से परिचय प्राप्त करना बेहतर समझूँगा। गाड़ी में कितने लोग और कितनी जिन्दगी होती हैं। कितनी जीवित पुस्तकें अपने अनुभव का ज्ञान हमारे सामने उड़ेलती हैं। अगर आदमी उससे कुछ नहीं सीख सकता तो वह सारी उम्र पढ़ कर भी कुछ नहीं सीख सकता।

इस विचार ने मुझे पहले से कहीं सजग और सतर्क कर दिया है, घर में, गाड़ी में, प्लेट फार्म पर हर जगह, हर व्यक्ति को मैं ध्यान से देखता हूँ और अपने देश के चालीस करोड़ लोगों से परिचित हो जाने की उत्कट कामना रखता हूँ।

हीरानन्द ने, दूसरों की बात की दाद देने और अपनी बात की दाद हासिल करने में जीवन बिताया है। इस लिए उसके मन में पढ़ने का लोभ कभी उत्पन्न नहीं हुआ। लेकिन इस बारे में सचेत न होते

हुए जीवन और जन साधारण की मुझ से अधिक परख वह रखता है। कई बार वह मुझे कोसता और कहता हुआ प्रतीत होता—तुम यह क्यों नहीं, क्यों, नहीं देखते ?

गाड़ी पर चढ़ने से पहले उसने प्लेटफार्म पर एक परिवार की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया था; यह संयुक्त-प्रांत का किसान परिवार था। पांच व्यक्ति थे। एक बूढ़ा, एक मर्द, एक औरत और दो बच्चे। वे देहात से आ रहे थे और गँगा स्नान करने कानपुर जा रहे थे, क्योंकि दूसरे दिन कोई धार्मिक मेला था। दूर से चल कर आए थे। थके-माँदे और भूखे थे। वे बैठे भोजन कर रहे थे।

"जरा देखो तो सही यह क्या खा रहे हैं ?" हीरानन्द बोला।

इनके बीच आटे की सी किसी चीज की पोटली रखी थी। और कुछ उनके आगे बर्तनों में पड़ा था जिसे वह पानी से भिगो कर गूंध-गूंध कर खा रहे थे।

हमारे लिए यह भोजन अजीब था और ये लोग भी अजीब थे, जो उसे बिना किसी सब्जी, तरकारी और दही, दूध के खा रहे थे।

मालूम हुआ कि यह सतुआ है, जो निर्धन वर्ग की एक मात्र खुराक है। स्मरण हो आता है कि मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों में यह शब्द कई बार पड़ा है। लेकिन उसे आँखों देखने का यह पहला अवसर था।

'इसमें तुम कुछ डालते भी हो या वैसे ही खा लेते हो ?'

'हाँ, हाँ, गुड़ डालते हैं।'

बूढ़े के बेटे, बच्चों के बाप और उस औरत के पति ने बुझी-बुझी आँखों से हमारी ओर देखते हुए कहा और अपने आगे गूँधे पड़े सतुआ का एक पिंड सा बना कर अपने मुँह में डाल लिया।

हम उनके क्षीण शरीरों, सूखे हुए चेहरों और उनके भोजन की ओर देखते रहे और फिर एक बैंच पर जा बैठे।

हीरानंद चुप कम रहता है । उसके पास सुनाने को इतनी कहानियाँ हैं कि कभी खत्म ही नहीं होतीं; और ये कहानियाँ उसके अपने जीवन से सम्बंधित हैं । लेकिन अब वह इन कहानियों को भूल कर इस परिवार की बात सोच रहा था । आखिर बोला—

'इसमें विटामीन क्या होते होंगे ?'

'विटामीन तो चेहरों से ही दिखाई दे रहे हैं ।'

मैंने उत्तर दिया जिसे वह दोहरा कर हँसा । लेकिन वह हँसी—हँसी नहीं थी—संवेदना का चीत्कार था । रुदन और विषाद था ।

अब यह परिवार मेरे सामने बैठा था । सिर्फ बूढ़े और औरत के समस्त शरीर पर मैले कुचैले कपड़े थे । मर्द और बच्चे धोती और लँगोटियों के अतिरिक्त बिल्कुल नँगे थे । क्षीण शरीर धूप सहते-सहते काले पड़ गए थे ।

उन्हें देख-देख कर मुझे विटामिन की याद आ रही थी और वह हँसी याद आ रही थी । हीरानंद हँसने को हर वक्त हँसता है । क्योंकि वह अपने दुःख से भी दुःखी नहीं होता । लेकिन उसकी यह हँसी अजीब थी । इसमें गम और विषाद भरा था ।

मैं सोच रहा था कि इनमें कौन-कौन होरी, कौन गोबर और कौन झींगुर है ? क्या वे जन्म-जन्मांतर से सतुआ खाते आए हैं ! वरना एक दो पीढ़ी में तो आदमी की नस्ल इतनी कमजोर नहीं हो सकती ?

गाड़ी पूरी रफ्तार से चल रही थी । डिब्बा लोगों से ठसाठस भरा हुआ था । ऊपर बर्थ पर बैठे लोग बन्दरों की तरह गर्दन आगे को झुकाए, झाँक रहे थे, क्योंकि सीधे बैठने को स्थान काफी नहीं था । दायीं ओर दो तीन आदमी बहस कर रहे थे । वे किसी खद्दरधारी से यह शिकायत करते मालूम हो रहे थे कि तकलीफ घटने के बजाय बढ़ रही है ।

उधर यह बहस हो रही थी, इधर मैं रूखे-सूखे चेहरों की ओर देख रहा था । हीरानंद अपने नए मित्र के साथ बातों में व्यस्त था और कोई न कोई बात दोहरा कर हँस रहा था ।

अब उसकी हँसी स्वच्छ और स्वछंद थी उसमें ग़म और विषाद का लेशमात्र नहीं था । मैंने सोचा काश, प्रेमचंद को भी यह हँसी नसीब होती । लेकिन वह तो इन्हीं झींगुरों-मींगुरों के बीच में रहता था । जिस जनता से उसने घनिष्ट सम्पर्क स्थापित कर रखा था उसके दुःख को महसूस न करना उसके लिए सम्भव नहीं था । आखिर इन्हीं के गम में घुल-घुल कर, इनके लिए स्वराज्य और सुख की कामना करते हुए वह मर गया ।

'फर्क क्यों नहीं ? अब देश आजाद हैं, यह फ़ौज हमारी है, ये सिपाही हमारे हैं । वे हमारी रक्षा करेंगे...'

खद्दरधारी व्यक्ति इतने ऊंचे स्वर से बोल रहा था कि डिब्बे में बैठे सब लोग चौंक उठे और उसकी ओर देखने लगे ।

ये शब्द मैंने पहले भी अखबारों में पढ़े थे । किसी काँग्रेस गवर्नर ने पन्द्रह अगस्त को फौजों का सैलूट लेते हुए कहे थे । यह खद्दरधारी व्यक्ति भी उसे ही दोहरा रहे थे ।

हीरानन्द खुद भी दूसरों की बात दोहराने का आदी था । लेकिन दोहराने से पहले उनका अर्न्तभाव और मर्म समझ लेता था, जो बात पसन्द न आती उसका वह विरोध करता था । अक्सर मजेदार उत्तर देता था । वह खद्दरधारी की बात सुन कर तड़प उठा और खड़े हो कर तेज़ और ऊँचे स्वर में पूछा—

"जनाब, जरा यह तो बताईए—क्या यही सिपाही हमारे हैं ?"

लोग हँसे और उसी अन्दाज़ से खद्दरधारी की ओर देखा जिस भाव से थोड़ी देर पहले उस काले भूत सिपाही की ओर देख रहे थे ।

हीरानंद विजय भाव से मुस्कराता हुआ अपनी जगह पर बैठ गया ।

मैंने उसका घुटना हिलाते हुए कहा—

"यह भी तो पूछ लेते—जो आदमी भूख से मर रहा है फौज उसकी क्या रक्षा करेगी ?"

जिस आदमी की सीट की रक्षा जान देकर भी यह काला भूत कर रहा था, वह पद में उससे ऊँचा था। सिपाही न होकर नायक था। इसलिए टोपी दिखा कर डराने वाला यह नंग-धड़ँग व्यक्ति उसके लिए स्थान खाली कर स्वयं नीचे फर्श पर जा बैठा क्योंकि अपने नजदीक उसने किसी को खड़ा भी नहीं होने दिया था।

"किराए पर !"

हीरानंद व्यंग्य से बोल कर मुस्करा पड़ा।

गाड़ी चल रही थी। हम सब चल रहे थे। जो चल रहा है, उसकी मन्ज़िल होती है।

हीरो

रवि को हम लोग हीरो कहते थे । पहले पहल उसने इस नाम से पुकारे जाने पर क्रोध प्रकट किया था । लेकिन धीरे-धीरे यह नाम उसके लिए छाती फुलाकर हर्ष और गर्व का कारण बन गया । कभी-कभी वह सचमुच हीरो बनने की कोशिश करता था ।

जाने किसने उसके लिए यह नाम तजवीज़ किया था लेकिन जब एक प्रस्ताव पेश हो गया तो हम सब ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया । अब यह नाम उसके व्यक्तित्व से बिलकुल चिपटा मालूम होता है । और जब हम उसे रवि के बजाये हीरो कह कर पुकारते हैं तो वह मुस्करा देता है ।

इस प्रस्ताव की प्रेरक बहुत सी बातें थीं, लेकिन ख़ास बात यह थी कि उसकी सगाई के शुभ अवसर पर मिठाई बाँटी जा रही थी । एक ही साल में यह तीसरा अवसर था कि रवि की माँ बेटे की बदौलत बधाई प्राप्त कर रही थी । घर वालों ने उसकी सफलताओं का पहले भी दो बार जशन मनाया था और मिठाई बाँटी थी । एक बार उसके बी० ए० पास करने पर और दूसरी बार बैंक में नौकरी लग जाने पर ।

हाँ, अब वह बैंक में मुलाजिम था और उसे एक सौ बीस रुपये महीना तनख्वाह मिलती थी । सुबह नौ बजे दफ्तर जाता था और शाम को पाँच, साढ़े पाँच बजे घर आता था । अगर कभी काम ज्यादा हुआ तो आठ बज जाते थे । ऐसे दिनों में भी वह घर से ही खाना खाकर दफ्तर जाता और लौटकर जो कुछ मिलता था दोबारा खाता था । घर से बाहर किसी चीज़ पर पैसे खर्च करना उसकी आदत में शामिल नहीं था । खर्च करना तो बाद की बात है वह तो जेब में पैसे रखना

भी उचित नहीं समझता था । हर महीने की पहली तारीख को वह खुश हो घर लौटता था और एक सौ उन्नीस रुपये पन्द्रह आने माँ के हाथ पर रख कर तरक्की पाने का आशीर्वाद पाता था । शुरू-शुरू में उसे यह दुःख रहा कि वह पूरे एक सौ बीस रुपये नहीं पाता, दफ्तर वाले एक आना रसीदी टिकट का क्यों काट लेते हैं ।

इस सिलसिले में उसने अपने दफ्तर की शिकायत हमसे भी की थी । लेकिन हम उसे सन्तुष्ट नहीं कर सके थे क्योंकि तनख्वाह में से एक आना काटने की बात रवि की तरह हमें भी अनुचित जान पड़ती थी । धीरे-धीरे यह बात उसके जीवन का उसी प्रकार अंग बन गयी जिस तरह सुबह उठकर खाना खाकर दफ्तर जाना, शाम को भूखे-प्यासे लौटना, कोट उतार कर खूँटी पर रख देना और पेंट को तह कर के सिरहाने रखना । उसकी जगह वह नीले रंग की निकर पहन लेता जो उसने कालिज के दिनों में खरीदी थी और जिसमें रबड़ का लचकदार जारबन्द पड़ा हुआ था । निकर का रंग अब उड़ गया था । फिर मां बेटे के लिए कुछ खाने को ले आती । वह खा कर चारपाई पर लेट जाता और टाँगे फैला कर शरीर यों ढीला छोड़ देता जैसे बरसों का थका हारा हो, जैसे थकावट उसकी आत्मा का अंग बन गयी हो।

सुदर्शन, मनोहर, बख्शा और मैं प्रायः शाम को सैर के लिए जाते थे । कभी-कभी रवि हमारे साथ जाता और उसके साथ होने से सैर की दिलचस्पी बढ़ जाती थी क्योंकि इस दशा में हम एक दूसरे से मज़ाक करने के बजाय उसे मज़ाक का विषय बना लेते थे ।

विषय बनना खुद उसे भी पसन्द था क्योंकि वह हमारी टोली का हीरो था । वह हम लोगों के बीच अधिक श्रेष्ठता प्राप्त कर चुका था । सुदर्शन और मनोहर सिर्फ मैट्रिक तक पढ़े थे । शायद इसी-लिए एक को सत्तर और दूसरे को अस्सी रुपए महीना वेतन मिलता था ।

मैं अभी कालेज में पढ़ता था । एफ० ए० में दो मर्तबा फ़ेल हो चुका था । अब तीसरी बार इम्तहान देने की तैयारी कर रहा था । लेकिन ख़ुद मुझ में भी दृढ़ता नहीं थी । बुद्धा तो बी० ए० पास था लेकिन पार साल से बेकार घूम रहा था । इसलिए रवि उसको तनिक भी परवाह न करता था । हमारा मज़ाक किसी तरह सहन भी कर लेता था लेकिन बुद्धा का मज़ाक तो क्या, उसकी सीधी-सादी बात भी फौरन काट करता था ।

एक बार बुद्धा ने कहा—

"ऊँह, बड़ा आया है हीरो ! ज़रा हीरो की शक्ल तो देखिए !"

'क्यों नहीं',—रवि ने छाती फुला कर कहा—

"तुम्हारी तरह बेकार थोड़े ही घूमता हूँ । इम्तहान पास करने की देर थी कि दूसरे महीने नौकरी मिल गई । तुम से ज्यादा नम्बर लिए हैं और मज़े से सवा सौ रुपया महीना पाता हूँ ।"

इससे पहले की बातचीत में कटुता उत्पन्न होती हमने ज़ोरदार ठहाका लगाथा जिसमें बुद्धा भी शामिल हो गया । लेकिन रवि दाँत निकाल कर धीरे से मुस्करा दिया और फिर होंठ लटका कर आगे-आगे चल पड़ा । मालूम होता था कि उसका मन प्रसन्नता से भर गया है और वह अपने अस्तित्व पर गर्व कर रहा है ।

रवि का माथा यों ही झुका सा रहता था । उसका कद मंझोला और शरीर भरा हुआ था लेकिन चेहरा अप्रतिभ और निरानंद मालूम होता था, जैसे आँखों की रोशनी बुझ चुकी हो, जैसे नौकरी प्राप्त कर सगाई करके उसके जीवन की सभी आशाएँ पूरी हो गई हों ।

जब वह होंठ लटका कर चलता तो हमें विशेष आनन्द मिलता था जैसे कोई विचित्र जीव चिड़ियाघर से छूट कर सड़क पर आ निकला और अब मूंह उठाये एक ऐसी दिशा में चल रहा हो जिसकी कोई मंजिल नहीं । इसलिए इस बात को हम बार-बार दोहराने लगे । जब कभी मज़ाक को

रोचक और नमकीन बनाने की जरूरत पड़ती तो हम बुद्धा को इशारा कर देते और वह झट उसकी कमजोर रग पर हाथ रख देता—

ऊँह ,बड़ा आया है हीरो !...

"क्यों नहीं ।" रवि छाती फुला कर जवाब देता—

"हीरो तो मैं हूँ ।..."

इसके बाद पहले की तरह ठहाका गूँज जाता और वह होंठ लटका कर आगे-आगे चलने लगता ।

आखिर यह मजाक काफी घिस गया और इसमें कोई ऐसी बात बाकी न रह गई जो ठहाका लगाने की प्रेरणा देती । इसे ज़रा नयी चमक देने के लिए मैंने एक दिन रवि के पक्ष में बोलते हुए कहा—

"भई हीरो तो वह वाकई है । एक साल में तीन बार खुशियाँ मनाना तो गवर्नर जनरल को भी नसीब नहीं होता '

"देखिए मिस्टर नरेन्द्र !' रवि तुनक कर बोला—

मज़ाक की कोई हद होती है । यह मेरी ज़ात पर हमला है और मैं इसे कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता ।"

हम हँसे तो वह अधिक झुँझलाया और हमें सीमा में रहने का उपदेश करने लगा ।

एक दिन बुद्धा और मनोहर हमारे साथ नहीं थे । सिर्फ सुदर्शन और मैं सैर को निकले, विचार किया कि किसी होटल में बैठ कर समय बिताएँगे । रास्ते में अचानक रवि मिल गया । वह भी हमारे साथ चल पड़ा । मगर हमने अपना विचार नहीं बदला । हम अनारकली से गुजरते हुए आखिरी नुक्कड़ पर स्थित प्रसिद्ध होटल में चले गए और बैरा को बीयर की एक बोतल लाने का आर्डर दिया ।

रवि बीयर तो क्या चाय तक से परहेज़ करता है और शायद होटल में बी आज पहली बार दाखिल हुआ था । अप्रेल का महीना था और गर्म सूट पहने था ।

हम बीयर पीने लगे। वह अलग एक दूसरी मेज़ पर बैठ गया और मुँह से उँगलियों के नाखून काटने लगा।

रवि को यों अलग बैठे देख कर बैरा ने कुछ इस ढंग से उसे देखा कि रवि घबरासा गया और नाखून कतरना छोड़ कर माथे पर हाथ फेरने लगा जैसे पसीना पोंछ रहा हो।

"गर्मी लगती हो तो पँखा खोल देता हूँ"—

बैरा बन कर बोला।

"जी बस, महरबानी है।"—

रवि ने दोनों हाथ जोड़ कर बड़ी ही दीनता और शिष्ठता से उत्तर दिया और वह उत्तर देते समय अपनी जगह पर ऐसे उठ खड़ा हुआ, जैसे दफ्तर में अफसर की आवाज सुन कर उठ खड़ा होता था।

बैरा, जो आदमी को समझने में चतुर था, ओठों ही ओठों में मुस्कराया।

हम कुछ नहीं बोले चुपचाप बीयर पीते रहे। जैसे इस, घटना का हमें ज्ञान ही न हो।

लेकिन होटल से बाहर निकलते ही हमने जोरदार ठहाका लगाया। हीरो ने हमारी निगाहों से समझ लिया कि इस ठहाके का कारण वही है। फिर भी वह उस समय तक तो इस कारण को नहीं समझ सका जब तक कि सुदर्शन ने उसकी नकल उतारते हुए अत्यन्त दीनता और शिष्टता से दोहरा नहीं दिया—

"जी बस, मेहरबानी है।"

घर पहुँच कर हमने यह बात बुद्धा और मनोहर को सुनाई और हम उसकी नकल उतार कर देर तक हँसते और खुश होते रहे।

रवि बार-बार एतराज करता रहा कि यह व्यक्तिगत आक्षेप है, उसका अपमान है। वह सहन नहीं कर सकता। लेकिन हमारे लिए तो यह महज़ मजाक था।

हम उसके लाख मना करने पर भी इस घटना की नकल उतारने से बाज़ नहीं आए। जितना वह मना करता था उतना ही हमें अधिक आनन्द प्राप्त होता था। उसकी उपस्थिति और अनुपस्थिति में हम यह बात अक्सर दोहराते और हँसते थे। इसके बाद कई नयी घटनाएँ घटित हुईं, मज़ाक बनीं और घिस गयीं। लेकिन यह मजाक घिसता ही नहीं था। जितना ही दोहराते थे उतना ही जमता जाता था।

इस घटना के बाद वह अपने आपमें कुछ बहुत ही लज्जित रहने लगा और हमें कई दिन तक लगातार—'हम तो यहीं मज़े में हैं' सुनना पड़ा।

हीरो पहले ही हमारे साथ सैर को कम जाता था। जब हम उसे बुलाते थे तो वह नीली निकर पहने और चारपाई पर लेटे-लेटे जवाब दे देता था—

"आप जाइए, हम तो यहीं मज़े में हैं।"

लेकिन जब नए महीने के आरम्भ होने पर उसे एक सौ उन्नीस रुपए पन्द्रह आने वेतन मिला और उसने माँ के मुख से उन्नति और ऊँचा पद प्राप्त करने की दुआएँ सुनी तब कहीं उसके भीतर का हीरो फिर सजग हुआ और वह पहले की तरह कभी-कभी हमारे साथ सैर को जाने लगा।

उसका और हमारा मकान एक दूसरे से सटा हुआ था। छुट्टी के दिन हम छत पर चढ़ बैठते थे। रवि चूंकि इम्तहान पास कर चुका था इसलिए पढ़ने-पढ़ाने की जरूरत ही महसूस नहीं करता था और मेरा मन तो पुस्तक में कभी लगा ही नहीं, इसलिए हम अक्सर बहस किया करते थे। बहस का विषय चाहे कुछ भी हो मगर हम एक दूसरे का विरोध ही करते थे। अगर हम भारतीय सभ्यता के रूढ़िवाद का जिक्र करते हुए उसकी बुराइयाँ गिनाते थे तो हीरो इसके गुण वर्णन करते हुए बड़े गर्व से कहता था—

"जनाब, अध्यात्मिकता में कोई भी देश भारत का मुकाबिला नहीं कर सकता ।"

अगर मैं कहता कि हवाई जहाज और टेलीफोन आदि यन्त्र जो हम देख रहे हैं पश्चिम का आविष्कार है तो वह मानने से इन्कार कर देता । रामायण और महाभारत से दलीलें पेश करता—श्री रामचंद्र ने लंका को जीत लिया तो वह पुष्पक विमान द्वारा उड़ कर अयोध्या आए थे । बस इस पुष्पक विमान का युरोप वालों ने दूसरा नाम ऐरोप्लेन रख दिया है और हमने, जो अपनी ही सभ्यता से अपरिचित हैं, इसका अनुवाद हवाई जहाज कर लिया है ।—

ज़रा दम लेकर वह फिर कहता—जिस आदमी ने महाभारत पढ़ी है वह जानता है कि टेलीफोन भी भारत का आविष्कार है । युद्ध कुरुक्षेत्र में होता था और सँजय हस्तिनापुर में बैठा सब कुछ सुनाया करता था । अगर भारत में तार और टेलीफोन भारत में नहीं थे तो बताइए युद्ध के क्षण-क्षण की खबर सँजय को कैसे पहुँच जाती थी ?

वह यह प्रमाण पेश करके ऐसे तन जाता था जैसे उनकी सत्यता में सन्देह हो ही नहीं सकता, जैसे वह चांद और सूर्य के अस्तित्व की तरह ठोस और प्रकाशित हों ।

सुदर्शन, मनोहर, बुद्धा और मैं और कुछ कहने के बजाय उसे अकड़ते और झगड़ते देख कर खुश होते थे ।

'अच्छा साहब यह बताइये' मैंने पूछा—'रामचन्द्र को लंका से अयोध्या पहुँचने में कितने दिन लगे थे ? पुष्पक विमान की रफ्तार कितने मील फी घण्टा थी ? जिस टेलीफोन पर संजय युद्ध की खबरें सुनते थे और सुनाते थे वह कौन से कारखाने में तैयार हुआ था ?'

रवि जवाब देने के बजाय झुंझला उठा—'इतने होशियार बने फिरते हो तो इम्तहान क्यों नहीं पास कर लेते ?'

'इसलिए'—मैंने गम्भीरता से उत्तर दिया—'मैं तुम्हारी तरह

किताबें रट नहीं सकता और इन्हें तोते की तरह दोहरा नहीं सकता ।'

'मैं तोता हूँ ।' हीरो ने आपत्ति की और हथियार संभाला—'यह जाती हमला है ! मेरा अपमान है, मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता ।'

जबसे दंगे छिड़े थे । हिन्दू-मुस्लिम समस्या अक्सर बहस का विषय बन जाता था । रवि बड़े गर्व से कहता था—

'हिन्दू मुसलमानों से कभी मार नहीं खा सकते । वे बहादुर हैं । महाराणा प्रताप और शिवाजी की संतान हैं जब कि मुससमाल उन बुज़दिल हिन्दुओं की औलाद हैं जिन्होंने हुकूमत के डर से अपना मज़हब बदल ड़ाला ।'

और हम जानते थे कि वह साईकिल पर इसलिए सवार नहीं होता है कि कहीं कोई घटना न हो जाए, मोटर अथवा टाँगे के नीचे आ कर अमूल्य जीवन खो न बैठे । इसके अलावा उसकी वीरता का यह खुला प्रमाण था कि वह ताश तक में हार जाना पसन्द नहीं करता उसे ताश खेलना भी नहीं आता था । इसलिए जब कभी हमारे साथ खेलने बैठता तो बेईमानी से जीतने की कोशिश करता । एक दिन बहुत जोर की बाजी बदी गयी, दोनों ओर से चैलेन्ज हो चुका था । किसी किस्म का घपला और बेईमानी की कड़ी मनाही थी । इसीलिए रवि को नहीं खेलाया गया । वह पास बैठा खेल देख रहा था । लेकिन बीच में ही बुद्धा किसी काम से उठ कर चला गया और रवि अपने ही ढ़ंग से खेलने लगा । पहली बार बेईमानी पकड़ी गई । उसने बदरंग फेंक कर एक पत्ता रख लिया, जो बाद में काम आ सकता था । उसकी यह हरकत किसी को भी पसन्द नहीं आई ।

मैंने व्यंग किया—-क्या इसी अध्यात्मिकता पर गर्व करते हो और फूल कर कहते हो कि कोई दूसरा देश मुकाबला नहीं कर सकता ।'

वह पहले तो कुछ लज्जित हुआ और दाँतों से नाखून काटने लगा, लेकिन सुदर्शन और मनोहर को मुस्कराते देख कर वह भी मुस्कराया

और बोला !

'यह बेईमानी थोड़े है । यह तो चालाकी है ।' और फिर अंग्रेज़ी का वह वाक्य दोहरा दिया जिसका मतलब है कि युद्ध और प्रेम में सब कुछ उचित है ।

गर्मी के दिनों में हम सब छत पर सोते थे । उस समय हीरो के गुण जाँचने का और भी अवसर मिलता था । एक बार जब गर्मी का मौसम आया तो उसकी छत पर बिजली का बल्ब लग गया। उसका मँझला भाई रेलवे में गुड्स क्लर्क था और इन दिनों गुड्स क्लर्कों की आमदनी में असाधारण वृद्धि हुई थीं । इस आमदनी के बल-बूते पर उसने यह बल्ब लगावाया था जो बैडस्विच द्वारा चारपाई पर लेटे-लेटे जल भी जाता था । कुछ दिनों हीरो को इस बल्ब के जलाने और बुझाने का बहुत शौक रहा । वह दिन छिपते ही छत पर चढ़ जाता, चारपाई पर लेट कर बैडस्विच हाथ में ले लेता, फिर धीरे-धीरे बल्ब को कभी जलाता और कभी बुझाता और बिजली की यह आंख-मिचौनी देखकर उसका चेहरा उल्लास से खिल जाता और पपड़ी जमे हुए ओठों पर मुस्कराहट दौड़ जाती ।

उसके बड़े भाई की नन्हीं लड़की श्यामा, जिसकी उम्र छः सात साल होगी, एक दिन उसके थोड़ी देर बाद छत पर चढ़ आयी । उसने जब चाचा को बिजली से खेलते और खुश होते देखा तो उसके मन में भी इस अद्भुत खिलौने से खेलने का शौक पैदा हुआ । उसने बिना कुछ कहे-सुने अपने स्वभाव के अनुसार झपट कर हीरो के हाथ से बटन छीन लिया ।

श्यामा को अपनी प्रसन्नता में यों बाधा डालते देख कर हीरो क्रुद्ध हो उठा और चट से दो-तीन चपत बेचारी के गाल पर रसीद किए । श्यामा रोने लगी तो वह आँखें निकाल कर बड़े रोब से बोला—
'चुप !'

लेकिन जब मना करने के बावजूद श्यामा चुप नहीं हुई तो उसने एक चपत और रसीद की । बस फिर क्या था रोने और चुप करान का सिलसिला शुरू हो गया ।

श्यामा रो रही थी और हीरो चुप कराने के लिए चपत लगा रहा था । बच्चों को चुप कराने का यह गुण उसने ज़िन्दगी के अनुभव से सीखा था । जब वह बच्चा था तो उसके बड़े भाई उसे थप्पड़ मार-मार कर चुप कराया करते थे । लेकिन वह हैरान था और झुँझला रहा था कि यह श्यामा चुप क्यों नहीं होती । इसलिए वह झुँझला रहा था और चपत लगा कर उसका असर देखने के लिए ठहर जाता था । फिर हिदायत के स्वर में कहता था—

'कहा नहीं मानती चुड़ैल कहीं की ।'

दूसरे दिन रवि की उपस्थिति में यह घटना बयान की गई तो वह चिढ़ गया । उसके गाल गुस्सा से लाल हो उठे और बोला—

'आपको किसी के घरेलू मामले में दखल देने का क्या हक है ?'

अब चूँकि उसे गुस्सा होते देख कर हम सबने सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लिया था कि मुझे उसके घरेलू मामले में दखल देने का अधिकार नहीं; इसलिए उन बहुत सी बातों के बारे में, जो मैंने छत पर देखी हैं, मैं कुछ नहीं कहता सिर्फ एक ऐसी बात कहता हूँ जो घर से नहीं बाज़ार से सम्बन्ध रखती है ।

शनिवार का दिन और महीने की पहली तारीख थी । रवि को तनखाह मिली थी और नियम से कुछ पहले दफ्तर से छुट्टी भी मिल गई थी । स्वभाव के प्रतिकूल उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि आज कुछ मौज़ किया जाए । सोच-सोच कर उसने एक योजना बनाई जिसे कार्यान्वित करने के लिए पाँच-सात आने पैसे ज़रूरी थे । इसलिए उसने पूरी तनखाह माँ को देने के बजाये एक सौ उन्नीस रुपए आठ आने दिए और सात आने अपने पास रख लिये ।

'बाकी ये पैसे क्या करोगे बेटा ?' माँ ने पूछा।

'जी चाहता है कि आज कुछ मौज किया जाए।'

सदाचारी पुत्र के मुंह से यह वाक्य सुनकर माँ चकित रह गई। वह समझ नहीं सकी कि घर में उसके लिए कौन-सी बात की कसर रह जाती है जो वह बाजार में जाकर मौज़ करेगा। पहले तो बहुत समझाया कि फ़िजूल पैसे खर्च करना उचित नहीं है। इससे आदत बिगड़ जाती है। लेकिन जब बेटे ने जिद्द करते हुए दलील दी कि जब से तनखाह मिलनी शुरू हुई है उसने अपने हाथ से एक भी पैसा खर्च करके नहीं देखा, तो माँ को जवान बेटे पर दया आ गई और इस शर्त पर उसने उसकी बात मान ली कि वह पाँच आने खुद खर्च करे और दो आने बच्चों में बाँट दे ताकि वे भी खुश हो जाएँ कि चाचा ने उन्हें पैसे दिए हैं।

वह जेब में पाँच आने पैसे और एक पुड़िया में दो-ढाई तोले खाँड ले कर हलवाई की दुकान पर पहुँचा जो दूध और मिठाई के लिए मशहूर थी और जिसके दुकानदार का यह नियम था कि जो ग्राहक पहले आता था उसे सौदा पहले दिया जाए, बाद में आने वाले को इन्तज़ार करना पड़ेगा।

लेकिन रवि जिन्दगी में पहली बार इस दुकान पर आया था। इसलिए हलवाई के हाथ में खांड की पुड़िया देते हुए पाव भर दूध की फ़रमाइश की और चटपट देने का तक़ाजा किया।

हलवाई पुड़िया रख कर इतमीनान से अपना काम करता रहा। जब वह पहले आये हुए ग्राहकों को निपटा चुका तो मेरी ओर उसने ध्यान दिया। उसे पाव की जगह आध सेर दूध बर्तन में डालते देख कर रवि बोला—'मैं...'

और फिर रवि मेरी ओर देख कर सकपकाया। मुझे दूध देकर जब हलवाई उसके लिए दूध सिराने लगा तो बोला—'पहले एक छटाँक

गजरैला दे दो।'

जब हलवाई गजरैला तौलने लगा तो रवि बड़े ध्यान से तराजू की डंडी पलड़े और उसके हाथ की ओर देखता रहा। उसने तौल ठीक करने के लिये पलड़े में से कुछ गजरैला निकाला तो रवि का मुँह लम्बा हो गया और वह आत्मा को आखों में समेट कर धीरे से बोला—'रह···...रहने...भी...'

लेकिन वह अपनी बात कह नहीं सका। किसी को सुना नहीं सका।

गजरैला खत्म करते-करते हलवाई ने उसके लिए दूध सिरा दिया और वह लेकर पीने लगा। लेकिन एक घूँट घोंट कर ठहर गया। परेशानी की हालत में हलवाई की ओर देखने लगा। मालूम होता था कि उसके साथ कुछ धोका हुआ है; वह ठगा गया है। उसके मन में हलचल मची हुई है। मगर वह अपनी बात कहने में सकुचा रहा है। उसने अपने हाथ के गिलास की ओर घूर कर देखा और कहा—

"दूध में मीठा थोड़ा है।"

"आप जो लाए थे वह तो मैंने डाल दिया है।"

'अच्छा!' उसने अनमस्कता से कहा और तनिक अवकाश के बाद फिर बोला—

"देखो तो कहीं भबके में न रह गया हो।"

हलवाई ने अवज्ञा से उसकी ओर देखा और भबका उठा कर सामने कर दिया। रवि दो-तीन मिनट तक एड़ियाँ उठा-उठा कर झुक-झुक कर ध्यान से भबके में झाँकता रहा। लेकिन उसमें खाँड का एक परमाणु भी नज़र नहीं आया। बर्तन को यों ख़ाली देख कर उसे बड़ी निराशा हुई। उसकी गर्दन खेद और लज्जा से झुक गई और ओंठ नीचे लटक गए।

चीनी की लाइन

लाइन प्रतिक्षण छोटी होती जा रही थी और शांति के मन में आशा बढ़ती जा रही थी । अब तो लाइन बिल्कुल छोटी रह गई । एक...दो...तीन—उसने गिना ।

उसके आगे सिर्फ दस आदमी थे । एक और दुकान के अन्दर चला गया । अब तो उसे चीनी अवश्य मिल जाएगी ।

दोपहर हो गई थी । वह सुबह दस बजे चीनी खरीदने घर से निकली थी । अपनी नन्हीं बच्ची और छोटे पुत्र को पड़ोसिन के पास छोड़ आई थी । वह उस वक्त से इस लाइन में खड़ी थी । हाथ में एक छोटी सी पर्ची थी जो चीनी के हर एक अभिलाषी को बाँटी गई थी । इस पर्ची को रूमाल में बंधे नोट से भी अधिक सावधानी से वह सम्भाले हुए थी ।

यह सस्ती चीनी की दूकान थी जो सरकार की तरफ से खोली गई थी । पिछले एक महीने से चीनी ने ज़ोने फाँदने शुरू किए थे और हर रोज ज्यादा मंहगी होती चली गई थी । एक दिन सुना कि बाज़ार में चीनी बिल्कुल नहीं मिलती । उस दिन और उसके दूसरे दिन उस के पति मनोहरलाल को बिना चाय पिए दफ्तर जाना पड़ा था । वह रिज़र्व बैंक में क्लर्क था ।

सुबह-सवेरे दफ्तर जाता था और शाम को छः-सात बजे लौट कर घर आता था । सौ रुपए मासिक वेतन मिलता था जिस पर दो बच्चे और मियाँ-बीबी की गुज़रबसर होती थी । मनोहरलाल हर महीने की पहली तारीख को सौ रुपए लाकर बीवी के सिपुर्द कर देता था ।

वह जैसे चाहे महीना भर का खर्च चलाए । पति तो अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता था ।

शांति मध्यमवर्ग की प्रत्येक सुशील और त्याग मूर्ति गृहिणी की तरह किफायत से काम लेती थी । बारह महीने बनस्पति घी का छोटा डब्बा और मिर्च-मसाले खारी बावली से एक साथ खरीद लाती थी और इस तरह दो-ढाई रुपए की बचत हो जाती । दो-चार आने की और बचत करने के लिए वह अक्सर सारा रास्ता पैदल ही तय कर लेती थी । ट्राम तक में भी सवार नहीं होती थी ।

अब चीनी तेरह आने सेर से पन्द्रह आने, रुपए, सवा रुपए और फिर डेढ़ रुपए सेर हो गई थी । एकदम दुगुने दाम खर्च कर देना उसके बूते की बात नहीं थी । दो-तीन दिन बिना चाय के कट गए । तीसरे दिन मनोहरलाल दफ्तर से लौटा तो वह बहुत ही खिन्न और उदास था । उसे आज दफ्तर में बड़े बाबू की भिड़कियाँ सहन करनी पड़ी थी । सारा दिन शरीर टूटता रहा था और उसे काम करना कठिन हो रहा था । वह अच्छी तरह समझता था कि यह चाय न मिलने का नतीजा है ।

शांति भी इसे स्वीकार करती थी । वे बच्चों के लिए बड़ी मुश्किल से आध सेर दूध ले पाते थे । उसी में से तोला-तोला अपनी चाय में लेते थे । बस इसी चाय का नशा था । भला और कौन सा पौष्टिक भोजन था जिसके सहारे जिन्दगी बसर हो ? जब से चाय मिलनी बन्द हुई, शांति खुद भी सुस्त रहती थी, अङ्ग-अङ्ग दुखता था जैसे शरीर में विष भर गया हो ।

अपनी तो उसे इतनी परवाह नहीं थी लेकिन मनोहरलाल की तकलीफ उसे गवारा नहीं । हो सकता है कि दफ्तर का काम ठीक ढँग से नहीं कर सकने के कारण उसे नौकरी ही से जवाब मिल जाए । दफ्तरों और कारखानों में छँटनी की बातें तो वह रोज सुनती थी ।

बहन का देवर सरकारी डिपो से निकाला गया था । अब छः महीने से बेकार घूम रहा था । अगर मनोहरलाल को भी इसी तरह दफ्तर से निकाल दिया गया तो क्या होगा ?

यह मंहगाई और फिर ऊपर से बेकारी ! उसका दिल काँप गया । उसे महसूस हुआ जैसे जिस जमीन पर वह खड़ी थी वह नीचे खिसक गई हो ।

वह उसी रोज गुड़ की शक्कर खरीद लाई । लेकिन शक्कर की चाय मनोहर लाल की तो बात क्या, खुद उसे भी अच्छी नहीं लगी । आखिर सरकार की ओरसे घोषणा प्रकाशित हुई कि चीनी की तकलीफ दूर करने के लिए सस्ती दुकानें खोली गई हैं जहाँ चीनी सवा तेरह आने फी सेर मिलेगी । इसलिए ब्लैकमार्केट में मँहगी चीनी खरीदने की जरू त नहीं ।

इस घोषणा को सुनकर शांति के मन को तसल्ली मिली और वह सात बजे ही खुशी-खुशी कर से चल पड़ी; नई सड़क करीब थी । सुना था कि वहाँ भी सस्ती चीनी का एक डिपो खुला है । वह इसे ही ढूंढ़ रही थी कि एक जगह कुछ आदमी चीनी खरीदते दीख पड़े, वह भी लेने के लिए दौड़ी लेकिन उसे जान कर सदमा पहुँचा कि यह सस्ती चीनी का डिपो नहीं 'ब्लैक' की दुकान है । जहाँ चीनी जितनी चाहो ले लो पर डेढ़ रुपए सेर मिलती है । वह निराश हो गई । पूछने पर किसी ने उपेक्षा से कहा कि अगर सस्ती चीनी की तलाश है तो वहाँ जाकर लाइन में खड़ी हो जाइए ।

वह लाइन में जाकर खड़ी हुई जो प्रतिक्षण बढ़ रही थी और शैतान की आँत की तरह लम्बी होती जा रही थी । मर्दों की पंक्ति अलग थी और औरतों की अलग । सामने डिपो था । नौ बजे खुलने का समय था । दरवाजे के ऊपर जो साईनबोर्ड लटक रहा था उस पर अंगरेजी और हिन्दी में लिखा हुआ था—

सस्ती चीनी की दूकान; यह दूकान सुबह नौ बजे से बारह बजे तक और शाम को चार बजे से छः बजे तक खुलती है ।

वह आठ बजे यहाँ पहुँच गई थी, पर लोग पहले से ही भारी संख्या में वहाँ मौजूद थे । शायद वे सुबह चार-पाँच बजे से इकट्ठे होने शुरू हुए हों; शायद उन्हें रात भर नींद ही न आई हो, पड़े-पड़े चीनी खरीदने ही की स्कीमें बनाते रहे हों । बच्चे, बूढ़े, जवान मर्द और औरतें सब पंक्ति बाँधे खड़े थे और सबकी निगाहें साईनबोर्ड पर जमी हुई थीं जैसे वे अपने अपने आप को विश्वास दिला रहे हों कि वाकई वे ठीक जगह पर खड़े हैं और उन्हें चीनी अवश्य मिलेगी ।

इस के अलावा उनकी आँखें कुछ और भी देख रहीं थीं । गाहे-बेगाहे सफेदपोश आदमियों के लिए दरवाजा धीरे से खुलता था । वे भीतर जाते थे और एक बोझिल सा थैला बगल में दबाए लौटते थे । लाइन में खड़े लोग उनकी ओर संदिग्ध नेत्रों से देखते रह जाते थे । डिपो का एक व्यक्ति जिसके सिर पर लम्बी सी टोपी थी और लम्बे चेहरे पर कोल्हू में जुते बैल के खोपे जैसा सफेद चश्मा था लोगों को लाइन में खड़े होने का आदेश दे रहा था और जिन्हें अभी तक पर्ची नहीं मिली थी उन्हें चार बजे आने का आदेश देकर लौटा रहा था । जब कोई सफेदपोश थैला लिए दूकान के भीतर से निकलता था तो लोग प्रश्नसूचक नेत्रों से इस ऐनकपोश की ओर देखते । वह ढिठाई से कहता था--

"उनके पास चीनी नहीं, दाल है !"

"दाल है, काहे की ?"

"ऊड़द की या अरहर की । मुमकिन है कि यह दाल मीठी भी हो ।"

लोग सरगोशियाँ करते और इन सरगोशियों में अवज्ञा और व्यंग भरा रहता था ।

शांति भी लाइन में खड़ी सब कुछ देख रही थी, मगर चुप थी । एक

वही नहीं उसी की तरह अनेक औरतें खड़ी थीं; वे सब खामोश थीं । जानती थीं कि कहने-सुनने से कुछ नहीं बनेगा । जब दूकान खोलना व्यर्थ हो तो बन्द रखना ही अच्छा है ।

आखिर नौ बजे चीनी मिलनी शुरू हुई और लाइन बल्कि लाइनें सरकनी शुरू हुईं । एक मर्तबा एक आदमी मर्दों की पंक्ति से और दूसरी बार एक औरत औरतों की पंक्ती से भीतर जाते थे और एक सेर चीनी लेकर लौट आते थे । इस प्रकार धीरे-धीरे लाइनें आगे सरक रही थीं और सबसे पीछे खड़े व्यक्ति के मन में भी आशा का अंकुर उठ रहा था ।

अचानक दो-चार बार हलचल सी हुई और मर्दों की पंक्ति में हँगामा मचा । लोग ऐनकपोश से इसलिए लगड़ रहे थे कि उसने अपने किसी परिचित व्यक्ति को जो अभी-अभी आया था पंक्ति में आगे खड़ा कर दिया था । झगड़े के बावजूद नवागंतुक को लाइन से निकाला नहीं गया । ऐनकपोश ने सर्वथा अनजान बनकर उसे दिखावे की भर्त्सना की । एक-दो धक्के दिए और फिर वहीं खड़ा रहने दिया ।

करीब ही पुलिस से भरा हुआ ट्रक खड़ा था । ऐसे समय ऐनकपोश की निगाहें सिपाहियों की ओर उठ जाती थीं क्योंकि वे कानून और अमन के रक्षक थे । लोग उसकी आँखों का संकेत पाकर चुप हो जाते थे । यह घटना एक बार नहीं कई बार दोहराई गई थी । नवागंतुक भी कभी किसी सिपाही का परिचित होता था और तो कभी इस ऐनकपोश का ।

"यह इन्तजाम है या अन्धेरगर्दी है ?"

लाइन में से किसी जी जले की आवाज निकलती और कोई व्यंगप्रिय व्यक्ति जवाब देता—

"हाँ भाई, अन्धेर नगरी चौपट राजा की कहानी बचपन में पढ़ी थी और अब आँखों देख रहे हैं ।"

नौ-दस और फिर ग्यारह बज गए। जो लोग पहले छाँह में खड़े थे उन्हें अब धूप झुलसा रही थी। जैसे-जैसे गर्मी बढ़ रही थी लोगों की व्याकुलता और कटुता भी बढ़ रही थी। सरगोशियाँ अधिक होने लगी थीं। लोग खड़े-खड़े थक गए थे। टाँगें काँप रही थीं। पाँव बदलते-बदलते तंग आ चुके थे। होठों पर भी प्यास के मारे पपड़ियां पड़ रही थीं। कल तो नजदीक ही थी पर पानी पीने जाएँ तो जगह छिन जाने का भय था। इसलिए मन मार कर पंक्ति में खड़े रहना पड़ता था।

आइसक्रीम बेचने वाले चीलों की तरह घूम रहे थे। उनकी तेज आवाजें—दो पैसे, चार पैसे, दो आने, खाये-मलाई की आइसक्रीम—कानों में चुभ रही थीं। धूप, गर्मी और प्यास से सताए हुए व्यक्ति ललचाई आँखों से उनकी ओर देख रहे थे। निगाह के साथ ही अवचेतन मन में हल्की सी प्रेरणा उत्पन्न होती थी जो अन्त में सफल होकर कार्यान्वित रूप में प्रकट हो जाती थी। आइसक्रीम वालों की दुकानदारी भी धूप के साथ ही भभक उठी थी।

शांति ने भी कई बार इन आइसक्रीम बेचने वालों की ओर देखा और अवज्ञा से मुँह फेर लिया। उसे उन पर क्रोध आ रहा था। उनकी आवाजें बड़ी ही तीखी थीं, उनकी शक्लें भी कुरूप जान पड़ती थीं। वैसे उसके मन में भी कई बार इच्छा उत्पन्न हुई जिसे उसने दबा दिया। पंक्ति में खड़े-खड़े सबके सामने बच्चों की तरह यह आइसक्रीम चूसना उसे छिछोरापन मालूम होता था। पर धूप तेज़ होती जा रही थी और उसके मन का संताप बढ़ता जा रहा था। प्यास के मारे होठों पर पपड़ियाँ जम गई थीं। शरीर की थकान मन को भी व्यथा पहुँचाती है। शांति को अब बार-बार बच्चों का और घर का ख्याल आ रहा था। मुन्ना हाथ-पांव पटकता होगा, भूख के मारे चिल्ला रहा होगा। उसका ख्याल था कि नौ-दस बजे चीनी लेकर लौट जाएगी। बच्चा इतनी देर भूखा कैसे रहेगा? बाहर का दूध

भी अभी पीने नहीं लगा । सिर्फ माँ के दूध पर रहता है । वह कांप उठी ।

मगर वह विवश थी । इतना समय नष्ट किया तो वह चीनी लेकर ही घर लौटेगी ।उसे अब तो जरूर मिल जाएगी क्योंकि उसके आगे की लाइन अब बहुत छोटी हो गई थी और शीघ्र ही उसका नम्बर आने वाला था । उसके आगे खड़ी एक अधेड़ उम्र औरत ने आइसक्रीम खरीदी और बच्चों की तरह उसे चूसने लगी । उसने इस औरत की ओर अवज्ञा और घृणा से देखा और मुंह दूसरी ओर फेर लिया ।

'आईसक्रीम, दो पैसे, चार पैसे !'

'एक दो पैसे वाली मुझे भी दे दो ।' एक दूसरी औरत ने गाँठ से पैसे खोलते हुए कहा ।

अब शांति से भी न रहा गया । उसकी ज़बान सूख रही थी । बच्चों की और घर की चिन्ता सता रही थी । उसने भी रूमाल की गाँठ खोल कर दो पैसे निकाले और झिझकते और शर्माते हुए आइस-क्रीम खरीद ली । कोई भी परिचित व्यक्ति वहाँ मौजूद नहीं था । पर वह तो अपने आप ही से झेंप रही थी ।

आइसक्रीम मीठी थी । उसमें खोया या मलाई कुछ नहीं थी । सफ़ेद पानी जमाकर मीठा डाल दिया गया था । मगर वह ठण्डी थी । उसके होठों और ज़ुबान को तर कर रही थी । दिल को ठंडक पहुँचा रही थी । वह उसे बच्चों के सदृश चूसने के बजाय बड़े-बड़े टुकड़े कर चबा गयी । उसे अपने हाथ में आइसक्रीम ऐसी मालूम हो रही थी जैसे यह कोई शाप और कलंक हो ।

उसे झटपट खत्म करके उसने एक दृष्टि दूकान पर डाली, और हिन्दी में लिखे हुए ये शब्द पढ़े—'सस्ती चीनी की दूकान', उसे अपने मुंह का स्वाद और भी मीठा और शीतल मालूम पड़ा ।

एक, दो, तीन...ग्यारह, बारह उसने आगे खड़ी हुई औरतों और

लड़कियों को गिना । उसे उन औरतों पर क्रोध आया जो अपने साथ छः-छः, सात-सात साल के बच्चों को भी घसीट लाई थीं । कितनी ओछी और नीच थीं जैसे एक ही दिन सारी चीनी खरीद कर घर भर लेंगी । उसके पाँव थक गए थे और माथे पर से पसीना बह रहा था, जिसे वह बार-बार पोंछती थी । अगर लाइन में छोटी लड़कियों की संख्या इतनी न होती तो वह कभी की चीनी लेकर घर लौट गई होती ।

धूप प्रतिक्षण तेज़ होती जा रही थी । पुलिस के सिपाही भी ट्रक लेकर चले गए थे। शायद अब किसी हँगामे की सम्भावना नहीं रह गई थी । भीड़ छँट चुकी थी । जो लोग लाइन में खड़े थे वे अपने नम्बर पर आराम से चीनी ले रहे थे । दोनों लाइनें बहुत छोटी रह गई थीं इसलिए हरएक को चीनी मिल जाने की आशा ही नहीं, विश्वास हो गया था ।

"......चार-पांच......नौ दस" और अब दसवीं औरत भी दूकान में चली गयी । नौ रह गईं । उनके बाद शांति की बारी है । उसने कदम आगे बढ़ाया, चीनी मिलने के मधुर विचार से उसकी आधी से अधिक थकान दूर हो गई ।

डिपो के आस-पास तीन मंजिले, चार मंजिले ऊँचे-ऊँचे मकान थे । चार-पाँच गज के फासले पर जो मकान था वह सबसे सुन्दर और विशाल मालूम होता था । उसका बरामदा आगे को बढ़ा हुआ था । ग्राहकों की पंक्ति उसके नीचे तक चली गई थी । इसी मकान की बग़ल में चीनी डेढ़ रुपये सेर बिक रही थी । लाइन ऊँची इमारतों के कारण ही अबतक धूप से बची रही थी । मगर इस समय तो उनकी परछाईं भी सिकुड़ गई थी अथवा दूर रह गई थी । दोपहर की चिलचिलाती धूप सिरों पर पड़ रही थी । शरीर जल रहा था और ऊँचे मकानों में से रेडियो चिल्ला रहा था—

'वह गोरा-गोरा चला गया ।'

शान्ति ने एक छुट्टी के दिन अपने पति के साथ उस फिल्म को देखा था जिसमें यह गीत था । फिल्म देखना उन्हें कहाँ नसीब था ? जीवन की नीरसता से तंग आकर कभी-कभी चले जाते थे । गीत सुन कर सारा दृश्य उसकी आँखों में घूम गया । गोरा-गोरा अंग्रेज चला गया । उसके बाद तिरंगा लहरा उठा । और बस यही इनकी आजादी है । उसके पति ने व्यंग भरे स्वर में कहा था ।

रेडियो पर का रेकार्ड बदल गया । शान्ति की विचारधारा भी बदली । उसने अपनी दृष्टि साईनबोर्ड पर केन्द्रित कर दी । उसकी आत्मा सिर्फ़ दो शब्दों के इर्द-गिर्द घूम रही थी—'सस्ती चीनी !'

'तीन, चार, पाँच ।'

शान्ति का दिल बल्लियों उछल पड़ा । सिर्फ पाँच आदमी रह गए । लो, पाँचवाँ भी लौट गया । अब चौथा आदमी भीतर जाएगा तो उसका अपना नम्बर चौथा हो जाएगा । और चार आदमियों को देर ही क्या लगती है !

लेकिन...लेकिन चौथे आदमी को भीतर घुसने की आज्ञा नहीं मिली । दूकान का दरवाजा एकदम बन्द हो गया । लोग उसकी ओर देखते रह गए । अब दरवाजे और दीवार में कोई अन्तर नहीं था । उसे तोड़ने के लिए उनकी संख्या—संगठित शक्ति काफी नहीं थी । बोर्ड अब भी अपनी जगह पर लटक रहा था और उस पर 'सस्ती चीनी की दूकान' मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था ।

शान्ति का सिर चकराने लगा । वह दीवार के पास बैठ गई । दस-पन्द्रह मिनट हतबुद्धि-सी बैठी रही । उसकी समस्त शक्ति लोप सी हो गई । सोचना तो क्या वह देख तक नहीं सकती थी । जैसे चार घन्टों की शारीरिक थकान आंखों में खिंच आई हो ।

आखिर वह साहस बटोर कर उठी । तीन-चार मर्द और औरतें

अब भी वहीं खड़े थे । और फटी-फटी आँखों से दूकान की ओर देख रहे थे । उनका नम्बर शान्ति से भी पहले था । अब वे खाली हाथ कैसे लौट जाएँ ? शायद वह चार बजे तक दूकान के दोबारा खुलने का इन्तजार करेंगी ।

मगर शान्ति ! उसके बच्चे घर पर रो रहे थे । उसके लिए अधिक ठहरना सम्भव नहीं था । वह चल पड़ी । पाँव मुश्किल से उठते थे । पर वह चली जा रही थी, ममता उसे घर की ओर खींच रही थी ।

ऊँचे मकान में रेडियो वैसे ही चल रहा था । उसमें अब सरकार की अपील सुनाई जा रही थी, जिसमें जनता को मशविरा दिया जा रहा था कि मँहगी चीजें न खरीदें ।

शान्ति ने और 'सस्ती चीनी' की दूकान के सामने खड़ी दूसरी औरतों ने नाक सुकेड़ ली जैसे उन्होंने कोई गाली सुनी हो, जैसे चीजों की मँहगाई की जिम्मेदारी मुनाफाखोरों और ब्लैकमार्केट करने वालों पर नहीं बल्कि जनसाधारण पर है, जो खामख्वाह मँहगी चीजें खरीदते हैं ।

धूप सहते-सहते ये लोग इतने परेशान हो गए कि अब उनके चेहरों पर क्रोध के निशान भी साफ दिखाई नहीं देते थे ।

शान्ति को लौटते समय फिर पति का ख्याल आया । वह कल दफ्तर से लौटते ही किस तरह चारपाई पर धम से गिर पड़ा था । उसे बड़े बाबू की झिड़कियाँ सहनी पड़ी थीं । चाय न मिले तो काम ढंग से नहीं हो पाता । और काम न कर सकने का परिणाम ? शान्ति को गोता सा महसूस हुआ जैसे उसके नीचे से वह ट्यूब निकल गई हो जिसके सहारे वह तैर रही थी ।

ऊँचे मकान की बगल में चीनी बारह बजे के बाद भी बदस्तूर

बिक रही थी । शान्ति ने आगा-पीछा कुछ नहीं देखा और जाकर कपड़ा बिछा दिया । अब उसे सेर भर चीनी का दाम डेढ़ रुपये की जगह पौने दो रुपये देना पड़ा । लेकिन उसे अब पैसों का ध्यान नहीं था, रंज नहीं था । उसे तो केवल सरकारी अपील याद आ रही थी—मँहगी चीजें मत खरीदो !

गुन्नो

नन्हीं मुन्नी गुन्नो को देख कर मेरे होंठों पर यों मुस्कराहट निखर उठती थी, जैसे रँगीन तितलियों को देख कर फूल मुस्करा देते हैं। वह जब भी मेरे पास आती, कोई न कोई नयी बात या नई खबर सुनाती। कभी-कभी उसकी आमद बड़े-बड़े तकाज़े, शिकवे और शिकायतें भी लिए होती और वह कमरे में प्रवेश करने से पूर्व ही कहना शुरू कर देती—'गुप्ता जी' मेरी कलम बना दो।' तख्ती पर लकीरें खींच दो। अपनी पेंसिल मुझे दे दो। मेरी पैंसिल क्रांति ने गुम करदी। क्रांति बड़ा खराब है, न अपनी चीज रखता है और न दूसरे की रहने देता है।'

इसके अलावा ऐसी दिलचस्प बातें भी करती, जो मुझे पहरों हँसाती और कभी न भूलती।

उस दिन वह अपना दायाँ बाजू अपने बाएँ हाथ में थामे हुए आई और मुझे देखते ही कहा—

'गुप्ता जी! देखो कितनी बड़ी फुंसी निकल आई है।' उसने बाजू मेरे घुटने पर रख दिया। उस पर लाल मुँह की एक तिल भर फुंसी थी।

'ओहो! यह तो बहुत ही भयानक है। फुंसी कहाँ फोड़ा है।' मैंने अतिशयोक्ति से काम लिया और पूछा—

'बहुत दर्द होता होगा?'

'हाँ, बड़ा...उसने मुँह फैलाते हुए उत्तर दिया और मेरी ओर ऐसे देखा जैसे पूछ रही हो—बताओ, अब मैं क्या करूँ?

मैंने स्याही से दो सामानांतर रेखाएँ फुंसी के दोनों ओर खींच दीं

और कहा— 'बीच में से इतना बाजू कटा दो न फुंली रहेगी न दर्द होगा।'

'ऐह, ऐसे तो यह हाथ भी व्यर्थ हो जाएगा।' उसने तत्क्षण कहा।

'हाथ भी व्यर्थ जाएगा' जैसे मैं सचमुच कटा देने का मशविरा दे रहा था। मैं तो उसे इसी प्रकार चिढ़ा देना चाहता था जिस प्रकार वह वह अपने फ्राक को फटा-पुराना कह देने पर चिढ़ जाती थी और तुनक कर उत्तर देती थी। 'भाभी जी मेरे लिए नया फ्राक सी रही हैं, तुम्हारे पास तो ऐसा फ्राक है भी नहीं। मेरा ख्याल था कि वह चिढ़ कर और नाक सिकोड़ कर कहेगी—ऊँ, मैं क्यों कटवा दूं अपना बाजू, तुम कटवा लो न अपना।'

उसके मुँह से यह आशा विरुद्ध, लेकिन सरल, निरीह और अनोखा उत्तर सुन कर मैंने हँस दिया और मुझे हँसते देख कर वह भी हँसने लगी।

हर रोज ऐसा होता था, मैं गुन्नो की बातों पर हँसता था और वह मुझे देख कर हँसती। इस हँसने-हँसाने ने हमें एक दूसरे के समीप कट दिया था। वह जब मुझे कमरे में बैठा देखती, झट दौड़ी आती।

उसके कम्यूनिस्ट पिता को युद्ध शुरू होते ही पकड़ कर नज़रबन्द कर दिया गया था। गुन्नो को अपने पिता से असीम प्रेम था। पिता की याद उसे कई दिन तक तड़पाती रही। वह माँ से रो-रोकर कहती कि मुझे भी बाबू जी के पास जेल में भेज दो।

इसलिए मैं यह प्रयत्न करता कि उसे कारावासित पिता की स्मृति न सताए और वह हँस-खेल कर समय बिताती रहे। दिन रात घुलते रहने से तो फूल सी बच्ची कुम्हला जाएगी। नन्हे जीवन को विकसित और पल्लवित होना है यदि कटुता अभी से उसकी आत्मा में प्रवेश कर गई तो वह जीवन पर्यन्त पनप न सकेगी। उसे परिस्थितियों की विवशता से अपरचित रखना ही बेहतर था। फिर भी उसे पिता की याद

अक्सर आ जाती और यह याद उस समय अवश्य आती जब डाकिया डाक लेकर आता और गुन्नो मेरे पास बैठी होती, वह अत्यन्त भोलेपन से पूछती—

'गुप्ता जी ! तुम्हारी चिट्ठी आती है, हमारी क्यों नहीं आती ?

'तुम्हें चिट्ठी कौन डालेगा गुन्नो ?'

'मेरे बाबू जी !'

उसकी आँखों में आकांक्षा भर आती और हँसमुख चेहरा फीका पड़ जाता जैसे ताजा गुलाब मुरझा गया है ।

बाबूजी की चिट्ठी की प्रतिक्षा गुन्नो को ही नहीं उसकी छोटी बहन गुड्डी को भी रहती थी । लेकिन वह अभी इतनी निरीह और सरल थी कि अगर कोई कागज का बेकार पुर्जा हाथ में थमा कर झूट-मूठ कह देता—ले गुड्डी तुम्हारे बाबूजी की चिट्ठी आई है, तो वह एक हाथ से चिट्ठी को छाती से लगा कर, दूसरे बाजू को जोर-जोर से घुमाती और 'बाबूजी की चिट्ठी', 'बाबूजी की चिट्ठी, चिल्लाती हुई अपनी माँ को दिखाने दौड़ जाती । लेकिन गुन्नो अब इतनी सयानी हो गई थी कि उसे अब यों झुटलाना सम्भव नहीं था । बल्कि वह खुद गुड्डी की सरलता पर हँसा करती थी क्योंकि जब बाबूजी की चिट्ठी आती थी, तो वह दोनों हाथों में लिए अँगूर खाती और नाचती हुई फुदका करती थी, जब पूछा जाता—'गुड्डी तुम्हें यह अंगूर किसने भेजे हैं ?'

'मेले बाबूजी ने ।'

वह सिर हिला कर उल्लास में मस्त उत्तर देती लेकिन गुन्नो तत्क्षण उसका प्रतिवाद करती—

'नहीं गुप्ताजी, यह तो वही अँगूर हैं जो मामी और मैं बाजार से खरीदकर लाई हूँ इसे तो वैसेही कह दिया गयाहै कि बाबूजी ने भेजे हैं ।'

गुन्नो सच कहती थी । उसके बाबूजी देवली कैम्प में नजरबन्द थे । सैंकड़ो मील का फासला—वहां से अँगूर कैसे भेज सकते थे वे ।

सिर्फ खत में लिख देते थे कि गुड्डी के लिए बाजार से अँगूर ला देना और मेरा प्यार देकर कहना कि तुम्हारे बाबूजी ने भेजे हैं ।

वह अँगूर लेकर खुशी से फूली न समाती । उसका नन्हा दिल भी बाबूजी के लिए प्यार से भर जाता । उसे प्रसन्न देख कर छेड़ने में मजा आता । जब हम पूछते—

'अच्छा गुड्डी और क्या भेजा है तुम्हारे बाबूजी ने ?'

'गुड्डो को पाल (प्यार) ।' वह झूमती हुई उत्तर देती ।

सब हँसते और गुन्नो हँसने के अलावा तालियाँ पीटती । इस प्रकार वह स्वयं निगाहों का निशाना बन जाती । कोई चुटकी लेता ।

'देखा गुन्नो, गुड्डी को प्यार भी भेजा है और अंगूर भी । मगर तुम्हें कुछ नहीं भेजा बाबूजी ने ।'

'कुछ क्यों नहीं, लिखा तो है गुणवन्ती को प्यार ।'

'कहाँ कुछ भी नहीं लिखा । वे गुड्डी के बाबूजी हैं तुम्हें तो पूछते भी नहीं ।'

'हाँ, आए बड़े कहीं के—पूछते क्यों नहीं । हर बार तो लिखते हैं गुणवन्ती को बहुत-बहुत प्यार ।'

जैसे-जैसे जिरह आगे बढ़ती, गुन्नो के जौहर खुलते । वह जरा भी परेशान न होती । प्रत्येक वाक्य इतनी गम्भीरता से कहती कि उससे ड्योढ़ी-दुगनी अवस्था की लड़की के लिए भी इस प्रकार इन वाक्यों को अदा करना कठिन था । उसे यह उत्तर इतनी बार दोहराने पड़े थे कि अब काफी मुहावरा हो गया था । वह प्रश्न का उत्तर रूठे मुंह से नहीं विनोद भाव से देती थी। इसलिए छेड़-छाड़ का सिलसिला हमेशा आगे बढ़ता रहता ।

'पहले लिखते होंगे । इस बार तो साफ लिखा है गुन्नो को प्यार मत देना ।'

'झूठे ! यह कहाँ लिखा है कि प्यार मत देना ।'

'जब प्यार देना नहीं लिखा तो इसका मतलब है कि प्यार मत देना।'

गुन्नो बिना घबराए संजीदगी से बोली—

'कभी आदमी भूल भी तो जाता है।'

मां का चेहरा हर्ष से खिल उठा। पिछली बार जब पत्र आया था तो बेटी को निरुत्तर होते देख माँ ने स्वयं यह उत्तर दिया था लेकिन अब गुन्नों ने बिना झिझक उसे दोहरा दिया। माँ उसकी सतर्कता और बुद्धि की प्रखरता पर क्यों प्रसन्न न होती! उसकी बेटी कितनी सयानी थी, उस में माँ के गुण अंकुरित हो रहे थोँ, परवरिश पा रहे थे।

जिस दिन बाबूजी का पत्र आता, माँ-बेटियाँ ही नहीं आस-पास के लोग भी प्रसन्न होते, जैसे कोई साँझा तेहवार मनाया जा रहा हो। उस दिन गुन्नों को जो खिलौने मिलते वह उन्हें लेकर गली में चली जाती। प्रमिला, अशोक, दर्शन और पीपो आदि समवयस्क बच्चों को जमा करके खूब खेलती। हालाँकि वह जानती थी कि खिलौने उसकी बीबी बाजार से खरीद लाई हैं, लेकिन जिस प्रकार गुड्डी हर एक से कहती थी कि अंगूर मेरे बाबूजी ने भेजे हैं, उसी प्रकार गुन्नो इन बच्चों से कहा करती थी कि खिलौने मेरे बाबूजी ने जेल से भेजे हैं। चूंकि बच्चे उसकी बात का विश्वास कर लेते थे, इसलिए वह आँखें चमका कर आगे कहती—

'बड़े ही अच्छे हैं मेरे बाबूजी।'

दिन बीतते गए, पत्र आते रहे, और खेल का सिलसिला जारी रहा इसके उपरान्त व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ। प्रमिला के पिताजी ने मजिस्ट्रेट को लिख दिया था कि वह कल सुबह सत्याग्रह करेंगे इसलिए पुलिस उन्हें शाम को ही गिरफ्तार करने चली आयी। गिरफ्तारी से पहले आरती उतारी गई, तिलक लगाया गया। लोग खूब जमा हुए। हार पहनाए गए, नारे लगाए गए जैसे वे जेल न जा रहे

हों, बरात चढ़ रहे हों, दुलहा बने हों ।

इसी प्रकार अशोक के पिता भी गिरफ्तार हुए, और लोग भी गिरफ्तार हुए । पुलिस आती थी और किसी न किसी नेता को मोटर में बैठा कर ले जाती थी । गुन्नो हैरान थी कि उन लोगों के गिरफ्तार होते समय इस प्रकार धूमधाम क्यों मनाई जाती है । उसके बाबूजी को भी तो पुलिस ने गिरफ्तार किया था । वह रातों-रात आई और पकड़ कर ले गई । किसी ने न आरती उतारी न तिलक लगाया । गुन्नों सोते-सोते चौंक पड़ी थी और पुलिस को देख कर डर गई थी ।

लेकिन अब जिस समय पुलिस किसी को गिरफ्तार करने आती गुन्नो डरती नहीं, बल्कि प्रसन्न होती थी, क्योंकि ये सब लोग जेल जा रहे थे और माँ ने उसे बताया था कि जब बहुत से लोग गिरफ्तार हो जाएँगे, तो जेल में जगह नहीं रहेगी । सरकार के लिए मुश्किल हो जाएगी और उन सब को छोड़ना पड़ेगा । गुन्नो चाहती थी कि पुलिस खूब आए । सबको पकड़ ले, खुद उसे भी पकड़ ले । जेल में वह बाबूजी के पास चली जाएगी और उनके गले में बाहें डाल कर कहेगी—

"देखा मैं कैसे आ गई आपके पास ।'

लेकिन गुन्नो को किसी ने नहीं पकड़ा । पुलिस अब इधर आती भी नहीं, अगर बहुत से लोग जेल में नहीं जाएँगे तो सरकार उसके बाबूजी को नहीं छोड़ेगी । एक दिन उसने मुझ से कहा—

"पुलिस तुम्हें क्यों नहीं पकड़ती ? इन सब लोगों को क्यों नहीं पकड़ती ?"

"पुलिस हर किसी को नहीं पकड़ती गुन्नो" ।

"अच्छा", गुन्नों सोच में पड़ गई । क्यों नहीं पकड़ती इन्हें ?

उसके मुख से अधीरता प्रकट हुई । मैंने उसे गोद में उठा लिया और पुचकार कर कहा—

"पुलिस उन लोगों को पकड़ती है, जो कहते हैं कि हम जंग में मदद नहीं देंगे ।"

"मैं भी कहती हूँ कि मैं जंग में मदद नहीं दूँगी मुझे भी पकड़े न पुलिस ।"

गुन्नो ने इस सहृदयता और सरलता से कहा कि मैं उसकी बात पर बे अख्तयार हँस पड़ा । लेकिन गुन्नो हँसी नहीं चुपचाप मेरे मुँह की ओर देखने लगी जैसे अपनी बात का उत्तर चाहती हो; जैसे अपने न पकड़े जाने का उसे मानसिक वाकई खेद हो ।

'गुन्नो, पुलिस बच्चों को नहीं पकड़ती ।'

गुन्नो चुप हो गई । मैंने लाख चाहा कि उसे किसी तरह हँसाऊँ लेकिन ऐसा नहीं कर सका । वह चुप बैठी रही । उसे बाप की याद आ रही थी । मैं उसका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करने में असमर्थ रहा ।

जिन्दगी करवटें बदलती रही । गुन्नो कभी उदास कभी प्रसन्न दिन गुजारती रही ।

सहसा उसे ख्याल आया कि बहुत से लोग जेलों में चले गए हैं । सरकार के पास जगह नहीं रही इसलिए उन्हें छोड़ रही । है प्रमिला के पिता, अशोक के पिता और दूसरे नेता जो हार पहन कर जेल गए थे रिहा होकर घर आ गए । लेकिन गुन्नो के बाबूजी नहीं आए । पहले तो गुन्नो खुश थी कि दो-चार दिन में वे भी आ जाएँगे । जब न आए तो उम्मीद टूट गई और वह अपनी मां से और मुझसे पूछने लगी—

'बाबूजी क्यों नहीं आते ?'

'सरकार उन्हें नहीं छोड़ती ।'

'जब इन सब को छोड़ दिया, उन्हें क्यों नहीं छोड़ती ?'

'यह लोग जेल नहीं तीर्थयात्रा को गए थे ।'

'तीर्थयात्रा ?'

'हाँ, तीर्थयात्रा ।'

मझे भय था कि गुन्नो अब तीर्थयात्रा का मतलब पूछेगी और मुझे बताना पड़ेगा कि तीर्थ वह स्थान होता है, जहाँ दुनियादार लोग पाँच-दस साल के बाद अपनी खुशी से जाते हैं। दान-धर्म और स्नान करते हैं, पिछले पाप धोकर पवित्र हो जाते हैं और घर लौट कर फिर कारो-बार में लग जाते हैं। लेकिन यह तो अच्छा हुआ कि गुन्नो ने मतलब नहीं पूछा। उसकी सरलता को विश्वास हो गया कि यह लोग जेल नहीं वाकई किसी दूसरी जगह गए थे ।

बच्चे जब आपस में खेलते थे तो उनमें गिरफ्तारी और रिहाई की बातें चलती थीं । जब प्रमिला के पिताजी जेल से आए तो उसने अशोक से पूछा—

'मेरे पिताजी आ गए, तुम्हारे पिता नहीं आए अशोक ?'

'*माताजी कहती हैं वे कल आ जायेंगे ।*'

'और बाबूजी भी आयेंगे ।' गुन्नों ने कहा ।

'हाँ, वे भी आयेंगे ।' अशोक बोला । गुन्नो का मन हर्ष से नाच उठा ।

दूसरे दिन अशोक के पिता जी सचमुच आ गए मगर गुन्नो के बाबूजी नहीं आए । फिर भी वह निराश नहीं हुई । उन्हें दूर भेजा गया था । दो-चार दिन में आजाएँगे । लेकिन मेरा उत्तर सुनने के उपरांत जब वह बच्चों के साथ खेलने गई तो उसने उन्हें आप ही खबर सुनाई ।

"मेरे बाबूजी नहीं आएँगे प्रमिला ?"

"क्यों नहीं आएँगे !"

"वे जेल गए हैं ।"

"हमारे पिताजी भी जेल गए थे ।"

'जेल कहाँ वे तो तीर्थयात्रा को गए थे।'

'तीर्थयात्रा को !' प्रमिला को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने पुकारा ।

'अशोक, अशोक ! गुन्नो कहती है हमारे पिताजी जेल नहीं तीर्थ यात्रा को गए थे ।'

'झूठ कहती है गुन्नो । मैंने खुद देखी है जेल । और तुमने भी तो देखी है, जब हम माताजी के साथ गए थे। बड़ा-सारा दरवाजा था, सामने सिपाही बन्दूक लिए खड़ा था । वह तीर्थयात्रा नहीं जेल थी । अन्दर से बाबूजी मिलने आए थे ।'

अशोक ने एक मुलाकात का हाल बयान किया । प्रमिला भी अपने पिता जी से मिलने गई थी उसने सवाल किया था—

'पिता जी घर कब चलोगे ?'

'जब जेल वाले छोड़ देंगे ।' उन्होंने दरोगा की ओर देख कर हँस दिया था।

सारा नक्शा उसकी आँखों में उभर आया और गुन्नो को बात के बेमानी होने का विश्वास हो गया। अशोक ने और उसने गुन्नो की खूब खिल्ली उड़ाई । हँसी उड़ते देख कर पीपो और दर्शन भी उनके साथ शामिल हो गई । गुन्नो बेचारी के लिए खेलना कठिन हो गया। वह बेचारी रुँआसी होकर लौट आई ।

मामला यहीं पर खत्म हो जाता तो अच्छा था । लेकिन बात आगे बढ़ गई । दूसरे दिन प्रमिला अपने पिता से पूछ बैठी—'पिता जी आप आ गए, गुन्नो के बाबूजी नहीं आए ?'

'सरकार उन्हें नहीं छोड़ती ।'

'जब आप को छोड़ दिया तो उन्हें क्यों नहीं छोड़ती ?' प्रमिला ने फिर पूछा । लेकिन पिताजी इसका क्या जबाब दें ! वे बड़ी जल्दी में थे। उनकी इन्सोरेन्स कम्पनी के डायरेक्टरों की खास मीटिंग

हो रही थी । समय हो गया था, बाहर मोटर तैयार खड़ी थी ! वे बच्ची को टालने के लिए बोले:—

'वे चोरी करके जेल गए हैं । सरकार चोरों को नहीं छोड़ती ।'

प्रमिला को पिता की बात का विश्वास हो गया । जब वह गली में खेलने गई तो उसने बड़े चाव से अपनी इस नई खोज की घोषणा की—'अशोक ! गुन्नो के बाबूजी नहीं आयेंगे । वे चोरी करके जेल गए हैं । सरकार चोरों को नहीं छोड़ती ।'

'मेरे बाबूजी चोर थोड़े हैं । वे तो झण्डा उठा कर जेल गए हैं ।' गुन्नो बोली ।

एक दिन उसके प्रश्नों का उत्तर देते हुए माँ ने गुन्नो को बतलाया कि जेल चोरों के लिए बनी है; लेकिन तुम्हारे बाबूजी चोर नहीं हैं, वे झण्डा उठा कर जेल गए हैं । यही बात गुन्नो ने दोहरा दी । अशोक ने भी जेल के बारे में अपने पिता से बातें की थीं, उसे भी तो अपने ज्ञान का प्रदर्शन करना था । बोला—हाँ, सरकार चोरों को कभी नहीं छोड़ती । उन्हें वहाँ खूब पीटा जाता है । खूब सजा मिलती है ।'

'और वह मर जाते हैं ।' प्रमिला बोली ।

'हाँ, मर जाते हैं ।'

'गुन्नो के बाबूजी भी मर गए इसलिए नहीं आए ।'

'क्यों मरे मेरे बाबूजी तेरे पिता जी न मर जाए ।' गुन्नो ने लाल-पीली होकर गाली दी । उसे चिढ़ते देख कर बच्चों को कौतूहल हुआ । प्रमिला और अशोक दोनों ने उसके मुँह के निकट हाथ ले जाकर कहा—

'अच्छा जी, मर गए । गुन्नो के बाबूजी मर गए ।'

वह झुंझलाई हुई बिल्ली की तरह उन पर झपट पड़ी । फिर क्या था, लड़ाई शुरू हो गयी । अशोक और प्रमिला ने मिल कर गुन्नो को पीट डाला । माँ उसका रोना सुन कर बाहर निकली और पुचकार

कर भीतर ले गई ।

लड़ना बच्चों का मामूल हो गया । प्रमिला और अशोक अपने-अपने खिलौने लाते और बड़े गर्व से कहते—'हमारे पिताजी ने दिए हैं ।' गुन्ना भी अपने खिलौने ले जाती और कहती—'मेरे बाबूजी ने भेजे हैं ।'

'बाबूजी ने कहाँ भेजे हैं । वे तो मर गए ।'

'हाँ, वे मर गए ।' अशोक समर्थन करता ।

'चिट्ठी तो तुम्हें बहलाने के लिए झूठ-मूठ डाल दी जाती है ।'

अब बच्चों को मालूम हो गया था कि गुड्डी को बहलाने के लिए झूठ-मूठ कह दिया जाता है कि अंगूर तुम्हारे बाबूजी ने भेजे हैं । उन्होंने चिट्ठी को भी झूठ-मूठ समझ लिया और आपस की लड़ाई में यह हथियार काम आया ।

उनकी इस दलील ने गुन्नो को भ्रम में डाल दिया । उसे कुछ भ्रम कुछ विश्वास होने लगा कि बाबूजी मर गए हैं, चिट्ठी झूठ-मूठ आती .. । उसकी माँ और हम लाख कहते कि चिट्ठी उन्हीं के हाथ की लिखी हुई है । वे सकुशल हैं और रिहा होकर जल्द घर आयेंगे, लेकिन गुन्नो नहीं मानती । इन्तजार करते-करते तीन साल होने को आए । हम जल्द आने की बात इतनी बार दोहरा चुके थे कि अब इस कथन का कोई विशेष महत्व नहीं रह गया था । गुन्नों इसे महज दिल बहलावा समझती थी और कोई भी दिलासा उसे बहला नहीं सकती थी ।

भ्रम तभी टूट सकता था, जब माँ उसे मुलाकात के लिए ले ती और वह बाप को अपनी आँखों देख लेती । लेकिन देवली कैम्प, कड़ों मील का फासला । पंजाब से चल कर वहाँ मुलाकात के लिए जाना, आसान बात नहीं थी । वैसे देश भर में माँग की जा रही थी कि नजरबन्दों को अपने-अपने प्रान्तों में भेजा जाए ताकि सम्बन्धियों

से मुलाकात कर सकें । आखिर सरकार ने यह बात मान ली । लेकिन दफ्तरी हुकूमत—हुक्म को अमली सूरत देते महीनों गुज़र गए ।

गुन्नो का विश्वास दृढ़ होता गया और पिता की चिन्ता में तिल-तिल करके घुलने लगी । हमारी किसी बात से उसे सांत्वना न होती । जो कुछ कहा जाता झूठ मालूम होता । झूठ उसके जीवन में रच चुका था । विष बन कर रग-रग में समा गया था । सच के लिए कोई गुँजाईश बाकी न रही थी ।

आखिर वह बीमार पड़ गई । ज्वर रहने लगा । किसी समय भी सौ डिग्री से कम न होता । शाम को १०३-१०४ तक पहुँच जाता । ताप की विषमता से गुन्नो हवास खो बैठती और सन्निपात की दशा में चिल्लाती ।

'माँ वे बाबूजी को मारते हैं । माँ कह दो उन्हें बाबूजी को न मारें । बाबूजी ने चोरी नहीं की ।'

माँ उसके माथे पर हाथ रखे बैठी रहती । चुप कराने का यत्न करती । लेकिन जैसे-जैसे ताप अधिक होता गुन्नों का जोश भी बढ़ता—

'माँ, बाबूजी नहीं आयेंगे । उन्हें जेल वालों ने मार दिया है वे अब नहीं आयेंगे ।'

माँ का दिल दहल जाता । वह अपनी विवशता पर और बच्ची की सोचनीय दशा पर आठ-आठ आंसू बहाती । एक दिन उसने मुझ से कहा कि एक दरखास्त ही लिख दो । शायद वे उन्हें पैरोल पर ही रिहा कर दें । जब पिता को देख लेगी तो गुन्नो की जान बच जाएगी । वरना इसका जीवित रहना कठिन है ।

मैंने दरखास्त लिख दी और गुन्नो जब होश में आई तो से कह दिया कि बाबूजी दस-पन्द्रह दिन में आ जायेंगे । लेकिन यह बात भी सच साबित न हुई । विद्रोही मनुष्य को पैरोल पर कौन रिहा

करता ? उसका तो सरकार से इतना ही सम्बन्ध था कि वह उसे बदलना चाहता था– ऐसे पिता की बच्ची मरती है तो मर जाए, सरकार को क्या परवाह पड़ी थी इसकी ।

'मां, बाबूजी नहीं आए ।' गुन्नो ने एक दिन पूछा ।

'नहीं बेटी, सरकार ने अभी उन्हें नहीं छोड़ा ।' माँ ने निराशा प्रकट की ।

'मां, बाबूजी मर गए !' गुन्नो फूट-फूट कर रोने लगी ।

गुन्नो की दशा दिन-ब-दिन बिगड़ती गई, ज्वर १०५ डिग्री तक आ पहुँचा । माँ माथे पर हाथ रखे विषाद की प्रतिमा बनी बैठी थी । गुन्नो बदहवासी की हालत से गजर कर अचेत अवस्था में पड़ी हुई थी । मुँह से कुछ बोल भी नहीं सकती थी । सहसा उसने आँखें खोली और कहा—'मां जाती हूँ, बाबूजी के पास ।'

दो-तीन हिचकियाँ ली और वह चली गई ।

हरिद्वार में

"भगतजी, मन्दिर इधर है"—किसी ने कहा । लेकिन त्रिलोचन ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया । वह गंगा की बहती, बढ़ती और उछलती धारा की ओर देख रहा था ।

"दर्शन नहीं कीजिएगा ?" आगंतुक ने जो एक साधु था, फिर कहा ।

"दर्शन मैं कर चुका हूँ ।" उत्तर संक्षिप्त ही नहीं इतना रूखा था कि साधु को और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ । वह चुपचाप वहाँ से चला गया ।

त्रिलोचन दस रोज से हरिद्वार में आया हुआ था । कनखल, ऋषि-केश, लक्ष्मण झूला—सब जगह घूम चुका था और मन्दिर देखते-देखते उकता गया था । अब जिस मन्दिर की ओर साधु ने संकेत किया था उसे भी वह देख चुका था । यह श्री स्वामी भोलानाथ गिरि का मन्दिर था । साधु के सामने से हट जाने के बाद मन्दिर का भीतरी दृश्य त्रिलोचन की नजरों में खिंच गया ।

मन्दिर में श्री स्वामी भोलानाथ गिरि की दो बड़ी,बड़ी मूर्तियाँ लगी थीं । एक में स्वामी जी के सामने श्रीमद्भागवत खुला पड़ा था और वे उसका अध्ययन कर रहे थे । दूसरी प्रतिमा में दिखाया गया था कि स्वामीजी समाधि में तल्लीन, साँस दसवें द्वार चढ़ाए बैठे हैं और आँखें बंद किए दुनिया तथा दुनिया के झंझटों से बेखबर भक्ति में डूबे हैं । इन मूर्तियों के दर्म्यान जो दरवाजा बना हुआ था उसमें स्वामी-जी का चेला अथवा मन्दिर का मुख्य पुजारी साक्षात विराजमान था ।

उसके हाथ में भी एक धार्मिक पुस्तक थी । त्रिलोचन पंद्रह-बीस मिनट तक खड़ा प्रतिमाओं को ; उनकी बनावट और मन्दिर की सज-धज को देखता रहा । पुजारी के हाथ की पुस्तक जिस पृष्ठ पर एक बार खुल गई थी उसी पर खुली रही । उसने पन्ना बदला नहीं । अलबत्ता होंठ आहिस्ता-आहिस्ता हिल रहे थे । शायद वह उस पृष्ठ पर लिखे हुए श्लोकों को कंठस्थ कर रहा था । शायद उनके अक्षर गिन रहा था । लोग मूर्तियों पर फूल और पैसे चढ़ा रहे थे । पुजारी आँख के कोनो से उन्हें देख रहा था । शायद श्लोक के अक्षरों के साथ-साथ चढ़ावे के पैसे गिन लेने की जिम्मेदारी भी उसने अपने ऊपर ले रखी थी ।

वहाँ एक साधु खड़ाँव पहने घूम रहा था । वह दर्शकों को इस इस मन्दिर के एक दूसरे भाग की ओर ले जाता था, जहाँ कृष्णजी की मूर्ति लगी थी । भक्तजन यहाँ भी चढ़ावा चढ़ाते थे और साधु मंदिर की महिमा का वर्णन करता था ।

सब मन्दिर इसी ढँग से बने थे । सब में इसी प्रकार चढ़ावा चढ़ता था और दिखाने वाले साधु इसी प्रकार उनकी महिमा का वर्णन करते थे । कनखल के रास्ते में शिव-पार्वती का बहुत ही सुन्दर और विशाल मन्दिर बना हुआ है । उसे किसी मारवाड़ी सेठ ने बनवाया था । जब त्रिलोचन इस मन्दिर को देख रहा था तो वहाँ भी साधु इसी तरह दर्शकों को मन्दिर के एक दूसरे भागमें ले गया था । बरामदे में कई साधु बैठे चिलम पी रहे थे । उसने एक कमरे का दरवाजा खोला जिसके फर्श पर रेशमी गलीचे बिछे हुए थे और ऊपर फानूस लटक रहे थे । खूब राजसी ठाठ था । इस कमरे में शंकराचार्य की मूर्ति रखी हुई थी और अत्यन्त श्रद्धा और सम्मान के साथ एक ऊँचे सिंहासन पर उस मारवाड़ी सेठ की मूर्ति रखी हुई थी जिसने इस मन्दिर का निर्माण कराया था । सेठ को शंकराचार्य के बराबर सम्मान क्यों दिया गया

है ?" त्रिलोचन सोच रहा था—"शायद इसलिए कि उसने भी शंकराचार्य की तरह धर्म का प्रचार किया है ।" और इस बात का समर्थन भी उसी समय हो गया । सेठजी की मूर्ति के गले में फूलों के हार पड़े थे । दर्शक उस पर फूल और पैसे चढ़ा रहे थे ।

"क्यों जी, सेठ जी की यह पूजा किसलिए हो रही है ?" त्रिलोचन ने पूछा ।

"क्यों न हो, सेठ जी साधारण मनुष्य थोड़े थे । इतना बड़ा मंदिर निर्माण कर गए, लाखों-करोड़ों रुपया धर्म-कार्य में लगाते रहे । वे तो साक्षात देवता थे, भगवान के स्वरूप थे ।" साधु ने कहा और दर्शकों ने श्रद्धा से सिर झुका दिए ।

सेठ जी का भाग्य बलवान था जो इस मूर्ति में भी अंकित हो गया था, तभी तो उसके आगे पैसों का ढेर क्षण-क्षण बढ़ता जा रहा था। शाम को मन्दिर के पुजारी सेठ जी की आत्मा को आशीष देते हुए इन पैसों को उसी प्रकार अपने खीसों में भर लेंगे जिस प्रकार बंदर खाद्य-पदार्थ को अपने जबड़ों में भर लेता है और फिर एक जगह इत्मिनान से बैठ कर खाता है ।

और फिर घाट पर तिलक लगाने वाला पण्डा सिर्फ इसलिए एक यात्री से लड़ पड़ा था कि वह अपने घर के चार व्यक्तियों को तिलक लगाने के सिर्फ दो पैसों देना चाहता था ।

त्रिलोचन को ऐसे कितने ही दृश्य और घटनाएँ याद हो आई थीं । उसके मन में अब उन्हें अधिक देखने की इच्छा बाकी न रही थी और न दिखाने वालों की बातों से कोई दिलचस्पी ही रह गई थी। वह आदमी को किसी और रंग में देखना चाहता था जिस पर धर्म, भक्त और श्रद्धा का खोल चढ़ा हुआ न हो, वह मनुष्य हो । लेकिन दस रोज़ में उसे कोई ऐसा आदमी न मिला । जान-पहचान के व्यक्ति से भेंट न हुई । अब वह अकेलापन महसूस कर रहा था । कमरे में बैठा

जी नहीं लगता था। वह इधर बिड़ला घाट पर निकल आया था कि वहाँ बैठ कर दरिया और दूर तक फैले हुए पहाड़ों का मनोरम दृश्य देखे। शायद किसी मनुष्य से भेंट हो, कोई परिचित व्यक्ति मिल जाए जिसके साथ हँस-बोल कर वह समय बिता सके, सैर का आनन्द ले सके।

वह विचार निमग्न-सा सीढ़ियों से नीचे उतर गया, बैठने के लिए घाट पर एक अच्छी-सी और कुछ एकांत-सी जगह बनी थी। उसने सोचा था कि चलो वहाँ जाकर बैठेंगे। और नहीं तो 'मन्दिर इधर है' से तो छुटकारा मिलेगा।

लेकिन जब वह इस जगह पहुँचा तो खूब रौनक बनी हुई थी। छः-सात नौजवान बैठे परेल खेल रहे थे। त्रिलोचन भी झट उनमें जा बैठा और जब दोबारा पत्ते बँटे तो उसने भी 'पूल' डाल दिया। खेल में शरीक होते ही अजनबीयत मिट गई। सदिग्ध नेत्रों का भाव बदल गया और बड़े तपाक से स्वागत हुआ—"अच्छा, आप भी हमारे साथी हैं।"

खेलने वाले बड़े ही चतुर और सजीव थे। जब कोई अजनबी करीब आता दिखाई देता तो पैसे झट उठाकर छुपा लेते। लेकिन साफ और निष्कपट खेल जारी रहता। ताश पर अगर पैसे न लगाए जाएँ तो उसका खेलना कहीं भी मना नहीं, धर्मस्थान पर—गंगा के घाट पर भी खेला जा सकता है।

"रोशनलाल तो खूब जीत रहा है।" एक सरदार ने कहा।

"इतनी मुद्दत में पत्ता पड़ा है और तुम नजर लगा रहे हो।" रोशनलाल पैसे रूमाल के नीचे रखता हुआ मुस्कराया और ताश उठा कर पत्ते मिलाने लगा।

"बाँटने से पहले पूल पूरा कर लो। छः आने हैं। एक आना कौन नहीं आया ?"

"मैं दे चुका हूँ ।"

"मैं दे चुका हूँ ।"

कई आवाजों ने एक साथ कहा ।

"शायद मैंने खुद नहीं डाला ।" रोशनलाल बोला और रूमाल के नीचे से एक आना पूल में सरका दिया ।

रोशनलाल के गोल चेहरे पर मुहासों के दाग थे और वह शरीर का भारी था । वह खेलने वालों में सबसे अधिक उम्र का दिखाई देता था । बड़ा ही घाघ और कांइयाँ था । दूसरे का चेहरा देखकर नब्ज पहचान जाता था । चाल चलते-चलते हाथ रोक लेता । आँख में आँख डालकर भाँप जाता कि प्रतिद्वन्द्वी के हाथ में पत्ता जबर्दस्त है । और जब उसे अपना पलड़ा भारी नजर आता तो आहिस्ता-आहिस्ता चाल बढ़ाता । मनोहर और साहसवर्धक मुस्कराहट होंठों पर लाकर और ललकार कर प्रतिद्वन्द्वी को जोश में ले आता । उसके हाथ में पत्ता आते ही पूल भी दूना हो जाता । जीतकर तो मुस्कराता ही था लेकिन वह हार कर भी मुस्कराता क्योंकि वह मैदान मारने और मैदान छोड़ने की विद्या से भली भांति परिचित था ।

उसके दायें हाथ सरदार बैठा था जो अल्हड़ और नौउम्र था ; लड़कपन से गुजरकर जवानी की दहलीज पर कदम रखा ही था । चेहरे पर छोटी-छोटी मूँछे और ठुड्डी पर चंद बाल दीख पड़ते थे । वह हर वक्त 'ब्लफ़' करता था । एक-दो बार उसकी चाल सफल भी हुई थी । लोग अब उसे समझ गए थे लेकिन यह ब्लफ़ किए जा रहा था और हार रहा था ।

एक बार रोशन के साथ उसकी चाल अड़ गई । रोशन के पास तीन गुलाम थे और सरदार के पास अठ्टी, नहले और दहले की रंगी रौंद । सरदार आपे से बाहर हो गया । पहले ब्लाईंड खूब लड़ चुकी थी । पूल में तीन-चार रुपये की खरीज जमा थी । दोनों की लल-

चाई हुई नजरें उसपर पड़ रही थीं और चाल बढ़ रही थी। रोशनलाल अपने हाथ के पत्तों को ऊपर-नीचे करके सोचता और सरदार की तरफ देखकर मुस्कराते हुए कहता—

"पत्ता तो तुम्हारा ही जबर्दस्त है। खैर, एक चवन्नी और सही।"

"और मेरी अठन्नी।" सरदार ने गर्म होकर कहा। चाल बढ़ती गई और आखिर जब सरदार ने पत्ते खुलवाए तो उसकी जेब से बारह रुपये निकल चुके थे।

एक बार सरदार के पास तीन इक्के और रोशनलाल के पास तीन बेगमें थीं। सरदार बहुत खुश था। हाथ कांप रहे थे। उसे खेल गर्म होने की पूर्ण आशा थी। लेकिन रोशनलाल ने दूसरी ही चाल में पत्ते पटक दिए। सरदार मुंह देखता रह गया।

पत्ता न होने पर हरेक हारता है लेकिन अनजान खिलाड़ी पत्ता लेकर भी हार जाता है।

"चाचा, अब तो तुम जीत रहे हो। मेरे दस आने दो"—नौ-दस साल का एक लड़का ऊपर चौकड़ी पर बैठा खेल देख रहा था! उसने रोशनलाल से कहा।

"चुप रहो, खेल लेने दो। बीच में नहीं बोला करते।" उसने उत्तर दिया।

"चाचा, तुम हार जाओगे।" लड़का बोला और फिर नदी की धार की ओर देखकर प्रार्थना की "हे गंगा माई, चाचा हार जाए, हार जाए!"

सब ने गंगा की ओर देखा जिसका पाट दूर तक फैला हुआ था। सरदार जब लगातार कई बार हार जाता तो पत्ते उठाने से पहले हाथ गंगाजल से धो लेता और जीतने का वरदान मांगता। अभाव और हार आदमी को रूढ़िवादी और धर्मभीरू बना देती है। हिन्दुस्तान

सदियों से गुलाम है । हारा हुआ है । तभी उसके करोड़ों निवासी तीर्थों और मंदिरों में मारे-मारे फिरते हैं । अपनी अपूर्ण कामनाओं की प्राप्ति के लिए गिड़गिड़ा कर वरदान माँगते हैं ।

सरदार ने लड़के के ध्यान दिलाने पर इस मर्तबा भी हाथ धोए और वह दाँव जीत गया ।

"मनोहर, तुम ठीक कहते हो । तुम्हारा चाचा हारेगा और मैं जीतूंगा ।"

"चाचा जरूर हारेगा । गंगा माई उसे हराएगी । वह मेरे पैसे नहीं देता ।"

"अच्छा जा छोटे, प्लेयर्स की आधी डिब्बी ले आ ।"

"लाओ, निकालो पैसे ।" मनोहर ने हाथ आगे बढ़ाया ।

"तेरे पास चार आने हैं । पहले सिगरेट ले आ । फिर दूँगा पैसे । एक आना ज्यादा मिलेगा ।"

"यह बात ।" वह बोला । "मेरा इतना भी एतबार नहीं ? मैं नहीं जाता ।" मनोहर बैठा रहा ।

"साले, मजदूरी मिलेगी । मुफ्त थोड़ा भेज रहे हैं ।" रोशन के निकट बैठे एक पतले-दुबले नौजवान ने कहा ।

"मैं कोई नौकर हूँ ? मजदूर हूँ ? नहीं जाता ।" मनोहर चिढ़ गया ।

"तो फिर यह चार आने क्यों लिए थे ?"

"यह कोई मजदूरी थी ! बहुत करोगे तो मैं गंगा में फेंक दूंगा । "हाँ, हाँ फेक दो, शाबाश !" किसी ने बढ़ावा दिया । मनोहर ने पैसे गंगा में फेंक दिए ।

उसकी ओर देख कर गणेश मुस्कराया । खेल के दौरान में वह चुपचाप बैठा था । उसके सिर के बाल बिखरे हुए थे । शायद सुबह से नहाया तक नहीं था । वह सिगरेट पिए जा रहा था और खेल

रहा था ! सारे खेल में शायद एक मर्तबा भी उसका दाँव नहीं पड़ा था । फिर भी उसे कोई शिकायत नहीं थी ।

"तुम कितना हार चुके हो, गणेश !" सरदार ने वैसे ही पूछा लेकिन गणेश ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

"और तुम कितना हार गए हो ?" किसी ने सरदार से पूछा ।

"यही तीन-चार रुपया ।"

"नहीं, ज्यादा हारे होगे ।"

"बाई गाड ! ज्यादा नहीं । पाँच रुपये लेकर बैठा था । यह एक रुपया कुछ आने मेरे पास हैं ।"

गणेश से यह सवाल कई बार पूछा गया था लेकिन उसने एक बार भी जवाब नहीं दिया था । शायद इसलिए कि उसे क़सम खाना पसंद नहीं था । शायद इसलिए कि उसे किसी को विश्वास दिलाने की ज़रूरत नहीं थी ।

"रोशन लाल, तुम कितना जीते हो ?"

"यही पाँचेक रुपया ।"

"गलत बात । एक तुम्हीं तो जीत रहे हो और सब हारे हैं । सारे रुपये गए कहाँ ?"

"मुरली भी तो जीत रहा है ।"

"हूँ !... जीत रहा है ।" मुरली ने पंजाबी का मोटा सा खुश-गवार शब्द इस्तेमाल किया । सबके चेहरे खिल उठे । वातावरण आनंद से भर गया—"देखो तो सही तुम्हारे पास कितने पैसे हैं ?"

"यह देख लो ।" रोशन ने रूमाल उठा दिया ।

"और जो नोट जेब में डाले हैं ?"

"और जो उधार दिए हैं ?"

रोशन मुस्करा दिया । और यह मुस्कराहट होठों से अधिक आँखों में प्रकट हुई थी ।

"बड़ा मक्कार है ।" सरदार ने कहा ।

न कोई सच्ची बात कहता था और न वहाँ कोई एक दूसरे का विश्वास करता था । हर एक अपनी जेब से हार रहा था और हर एक अपने लिए जीत रहा था और गणेश तो सिगरेट भी अपनी ही पी रहा था और उसका धुआँ लगातार छोड़ रहा था ।। न सिगरेट होठों से अलग होती थी और न कुछ बोलता था । उसे बोलने की जरूरत ही नहीं थी ।

"पैसे छिपा लीजिए ।"

"कोई डर की बात नहीं । अपना ही आदमी है ।" रोशन लाल ने पीछे की तरफ देखकर कहा । भारी शरीर का एक हँस-मुख नौजवान आ रहा था ।

"मुझे भी जगह दीजिए ।" उसने करीब आकर कहा लेकिन जगह-तंग थी । खेलने वालों ने जो चक्कर बाँध रखा था उसमें और आदमी समा नहीं सकता था ।

"आप यहां आजाइए ।" त्रिलोचन ने कहा और वह उसके लिए जगह बना कर चबूतरे पर जा बैठा ।

"क्यों, क्यों आप भी बैठे रहिए ।" सबने एक साथ कहा ।

"नहीं, मैं खेलने का आदी नहीं ।"

"आदी तो कोई भी नहीं । वैसे ही शुगल हो रहा है ।"

खेल बदस्तूर जारी रहा । सरदार बार-बार ब्लफ करता और बार-बार हार जाता था । लेकिन जब कभी सफल हो जाता तो पैसे बटोरते समय उसका चेहरा ऐसे खिल जाता जैसे अपनी चालाकी को आप ही दाद दे रहा हो ।

गणेश के हाथ में भी एक-दो बार पत्ते आ गए । ऐसा मालूम होता था कि खेल का पलड़ा उसके हक में पलट गया है । लेकिन उसके चेहरे की भावभंगी वैसी ही बनी रही । कोई भी उद्विग्नता नहीं, वह

अब भी शांत और निर्विकार भाव से खेल रहा था जैसे हार और जीत उसके लिए कोई महत्व ही न रखती हो। वह खिलाड़ी है और खेल रहा है।

"भगत जी ! आप लोगों को यह बात शोभा नहीं देती।"

"कौन सी बात ?" मुरली बोला।

"यह जुआ जो आप खेल रहे हैं।"

"जुआ नहीं महाराज। यह तो शुगल है।"

"देख लीजिए, भगत जी ! आप लोग तीर्थयात्रा के लिए आए हैं। और तीर्थ पर आना भाग्यवान को प्राप्त होता है। यह समय नीच कार्य में खोना उचित नहीं।"

"महाराज, नौजवान जो हुए। दिल बहला रहे हैं।" रोशन बोला।

"दिल बहलाने के और बहुत साधन हैं। देखो गंगा माई का शीतल जल कैसा स्वच्छ है। शरीर पर लगाने से आत्मा शुद्ध और पवित्र होती है। हरि का नाम लो। मन्दिर में जाकर दर्शन करो..."

महाराज पच्चीस-छब्बीस साल के साधु थे। भगवे कपड़े पहिन रखे थे। सिर पर जटाएँ थीं और हाथ में कमण्डल। वह श्री स्वामी भोलानाथ गिरि के चेला थे। गंगा में स्नान करने आए थे ताकि आत्मा शुद्ध और पवित्र हो जाए। मंदिर में जाकर अपने आसन पर बैठ जाएँगे। धार्मिक पुस्तक पढ़ेंगे और हरि का नाम जपेंगे। नौजवानों को कुमार्ग पर चलते देख कर तरस आ गया और वे उन्हें धर्म का उपदेश देने के लिए खड़े हो गए।

नौजवानों की नज़र चूक गई। उन्होंने साधु-महात्मा को आते नहीं देखा। इसलिए पैसे नहीं छिपा सके। अब ऐसा मालूम होता था कि जब तक वे ताश गंगा में फेंक-फाँक कर आगे जुआ न खेलने का व्रत धारण नहीं करेंगे, साधु-महात्मा वहाँ से टलने का नाम नहीं लेंगे।

उपदेश जारी था और नौजवान उनके मुँह की ओर देख रहे थे कि

एकाएक गणेश का हाथ आगे बढ़ा और उसने पूल में से एक चवन्नी उठाकर साधु महात्मा के हाथ में थमाते हुए कहा—

"जाइए महाराज ! जाकर बीड़ी पी लेना ।"

महाराज चुप हो गए और कुछ अजीब ढंग से उसकी ओर देखने लगे ।

"हाँ, हाँ ! जाइए ।"

"अच्छा भगत जी ! आपकी इच्छा ।"

साधु महाराज चले गए । खेल जारी हो गया । मनोहर न जाने क्यों खिलखिला कर हँस पड़ा । शायद उसे अपने गंगा में डूबे हुए पैसों का ख्याल आ गया । त्रिलोचन कभी जाते हुए साधु को और कभी गणेश को देख रहा था ।

बल्लन

बल्लन जब दोबारा काम पर बैठा तो वह मुस्करा रहा था—यह मुस्कराहट एक महान् व्यक्ति की मुस्कराहट थी। अमर महानता उसकी आत्मा को गुदगुदा रही थी। मालिक ने उनकी तमाम माँगें स्वीकार कर ली थीं और उनकी हड़ताल सफल हुई थी। यही सफलता उसकी प्रसन्नता और मुस्कराहट का कारण थी। हालाँकि हड़ताली मजदूरों में वह उम्र और अनुभव में वह सबसे छोटा था लेकिन वह अपने को हड़ताल का नायक समझता था और अपने अन्दर एक ऐसी शक्ति अनुभव कर रहा था जिससे वह आज तक जैसे अपरिचित था।

बल्लन इकहरे शरीर का नौजवान था, तेज और फुर्तीला। उम्र तेरह-चौदह साल से अधिक नहीं थी। वह हमेशा एक कमीज और एक निकर पहने रहता था। कमीज कन्धों पर से फट गई थी क्योंकि वह किताबों की गड्डियाँ उठा-उठा कर इधर से उधर रखा करता था। उन्हें उठा कर उस कमरे में छोड़ आता था जिसमें कोने तराशने की मशीन लगी हुई थी। वहाँ वह किताबों की गड्डियाँ जमीन पर रख कर कागज की कतरनों को मुट्ठी भर लेकर उसे उछालता। और उन्हें उड़ते और बिखरते देख कर खुश होता। दो मिनट के लिए यों ही कतरनों के ढेर पर बैठ जाता फिर मुट्ठी भर लेकर उसे उछालता। लेकिन जब उसका उस्ताद रशीद डपट कर कहता—'चलो, भागो काम करो!' तो वह चुपचाप उठ खड़ा होता और आकर अपने काम में जुट जाता। लेकिन रशीद के शब्द उसके कानों में देर तक गूँजते रहते, उसका चेहरा

नजरों के सामने घूमता, स्वर की करकशीत और कड़वाहट उसके नन्हें चेहरे पर अंकित हो जाती ।

मगर रशीद के हजार झिड़कने के बावजूद जब कभी उसे मशीन वाले कमरे में जाने का अवसर मिलता तो वह कतरनों की मुट्ठी जरूर उछालता । उन्हें उड़ता देख कर उसे ऐसा लगता जैसे वह कोई मधुर स्वप्न देख रहा हो और तनिक इस अम्बार पर बैठ कर उसके मन का बोझ हल्का हो गया हो ।

शहर में यह दफ्तरी का सबसे बड़ा कारखाना था । पचास-साठ मजदूर काम करते थे । रशीद फोरमैन था । इसलिए मालिक का वफादार था। खुद काम करने के अलावा उसे दूसरों के काम की निगरानी करनी पड़ती थी। इसलिए वह साथी मजदूरों को डाँटना-डपटना अपना अधिकार समझता था । हम उम्र और बड़े मजदूरों पर तो उसका रोब इतना कारगर नहीं होता था लेकिन छोटे लड़के उसकी परछाईं से घबराते थे क्योंकि वह सिर्फ़ जुबान ही से नहीं, कभी-कभी हाथ से भी काम लेता था ।

एक मरतबा बल्लन तार से छोटी पुस्तकें और पत्रिकाएँ सीने वाली मशीन के पास खड़ा था और देख रहा था कि किस प्रकार तार खट से कागजों में समा जाता है और पुस्तक सिल जाती है । अचानक रशीद ने उसका कान मरोड़ कर कहा—'यहाँ खड़ा क्या देख रहा है, अपना काम क्यों नहीं करता।' दूसरे लड़कों के प्रति भी उसका यही रवैया था। वह चपत तक लगाने से नहीं चूकता था। कई लड़कों के बाप मालिक से शिकायत करने भी आए मगर कोई सुनवाई नहीं हुई, उत्तर मिला—'यहाँ इन्हें काम सिखाना है कि प्यार करना है।'

बल्लन दूसरे लड़कों की तरह मन ही मन रशीद से चिढ़ाता था और कभी-कभी महज़ विद्रूप भाव से ही शरारत किया करता था । रशीद को भुँझलाते देखना भी उसे अच्छा लगता था । वह काफी

होशियार और निपुण था। दो-ढाई साल इसी कारखाने में काम करते बीत गए थे। पहले छः महीने मुफ्त काम किया, सीखता रहा। फिर सात रुपए महीना तनख्वाह नियत हो गई जो डेढ़ साल तक मिलती रही। लेकिन इस समय काम के हिसाब से मजदूरी मिलती थी। फर्में मोड़ने और जिल्द बाँधने की दर पर, ठेके के हिसाब से जितना काम कोई मजदूर करता था उतना उसके हिसाब से जोड़ दिया जाता था।

चन्द महीने से बल्लन भी ऐसे मजदूरों में शामिल था। जितना काम करता था उतनी ही मजदूरी पाता था। फिर वह रशीद की धौंस क्यों सहे। हरज करता है तो अपना। उसकी गिरह से कुछ नहीं जाता। आदमी कोल्हू के बैल की तरह जुते रहना तो कभी पसन्द नहीं करता। जरा हँसने-खेलने, इधर-उधर देखने और मज़ाक़ करने से काम का बोझ महसूस नहीं होता।

लेकिन रशीद हर वक्त सर पर सवार रहता था। वह बड़े लाला से भी अधिक कड़ाई रखता था। हाँ, बड़े लाला से भी अधिक कड़ाई।

बड़ा लाला बहुत सख्त और कठोर था। उसकी नाक हर वक्त चढ़ी रहती थी। बल्लन ने उसे कभी मुस्कराते नहीं देखा। वैसे वे चार हिस्सेदार थे—तीन भाई और एक कोई निकट का सम्बन्धी, जिसे सब मास्टर जी कहते थे मास्टरजी। भले आदमी थे। बड़े लालाजी प्रायः उन्हें नौकरों और मजदूरों की तरह डांट देते थे। दूसरे लोगों को यह बात बुरी मालुम होती थी। लेकिनउसे कतई परवाह नहीं थी। उसका चेहरा शान्त और गम्भीर ही रहता जैसे बालू पर पानी का बुलबुला, बना और मिट गया। उसका काम विशेषतः हिसाब-किताब रखना, बैंक से रुपये निकलवाना, जमा करना और हफ्ते के रोज मजदूरों को टके बाँट देना था।

कारोबार अच्छा चल रहा था। उन्नति हो रही थी। पहले तो यह मालिक लोग भी मजदूरों के साथ मिल कर काम करते थे। लाभ पर कम और अपनी मजदूरी पर अधिक भरोसा रखते थे। उस

समय मजदूर सिर्फ दस-पन्द्रह थे और एक ही कमरे में सब काम होता था। लेकिन धीरे-धीरे कारोबार फैल गया। दो दुकानें तो करीब ही मिल गई थीं और एक तीसरा बड़ा कमरा भी जो दोनों दुकानों के बराबर खुला और चौकोन था। मजदूरों की तादाद में जितनी बढ़ती हुई थी उसी अनुपात से मालिकों का मुनाफा भी बढ़ गया था। अब उन्हें अपने हाथ से काम करने की जरूरत नहीं थी। निगरानी से ही फुरसत नहीं मिलती थी। बड़े लाला ने तो अपने बैठने के लिए बाकायदा काऊँण्टर बनवा लिया था ताकि कोई मजदूर अगर बात करने आए तो जरा फासले पर खड़ा हो। वे अब उनके साथ कन्धे से कन्धा जोड़ कर फार्म नहीं मोड़ते थे, लेई नहीं लगाते थे बल्कि कुर्सी पर बैठते थे। वे अब मजदूर नहीं 'आजाद हिंद बुक बाईंडिंग हाउस' के मालिक थे।

छोटे-छोटे निजी कारोबार बड़े पूंजीवादी कारोबार को जन्म देते हैं।

बल्लन इस बुक बाईंडिंग हाउस में एक छोटा सा-मजदूर था। जिस प्रकार यह कारोबार फैल रहा था वह उसी प्रकार अपने अस्तित्व को फैला देना चाहता था लेकिन उसे फैलाने की आज्ञा नहीं थी। उसे कतरन तक उठाने से मना किया जाता था। उसे बदस्तूर मालिकों और मालिकों से अधिक फोरमैन रशीद की झिड़कियां सहन करनी पड़ती थीं, वह सहता था। दूसरी कोई सूरत नजर नहीं आती थी। जो मेहनत बेचने के लिए विवश है उसके भाग्य में झिड़कियां सहन करना भी बदा है।

पूंजीवादी व्यवस्था में मेहनत और गुलामी की सीमाएं परस्पर मिल जाती हैं।

बल्लन अपने काम में व्यस्त हो कर रशीद की झिड़कियों और मालिकों की डाँट-डपट को भूल जाने की कोशिश करता। उसे जो

दुःख होता उसे अन्दर ही अन्दर पी जाता । जुबान से उसने कभी मामूली-सा विरोध या रोष भी प्रकट नहीं किया । जब देखो अपने काम में मस्त है । कभी फर्मे मोड़ रहा है, कभी जुजबन्दी करता है, कभी सुराख करके उनमें से धागा पिरो रहा है और कभी लेई लगा-लगा कर किताब की पुश्त चिपका रहा है ।

जब वह अपने काम में व्यस्त होता, बहुत ही भोला-भाला और सरल मालूम होता । उसके चेहरे को देखकर कभी यह गुमान भी नहीं हो सकता था कि उसके भीतर क्रोध और घृणा की लहरें भी उठती रहती हैं, उसका नन्हा-सा दिल भी विद्रोह-भावना से परिचित है । उसके साथी जब मौका पाते तो एक दूसरे को गाली देते मजाक करते और बोझिल श्रम की थकान दूर करते हैं । बल्लन को चुप देखकर जब वे कहते हैं—'तू नहीं बोलता भूतनी के !' तो वह सहर्ष मुस्करा देता और किसी न किसी पर एक-दो वाक्य भी चुस्त कर देता है और अपने पर कसे गए दूसरों के वाक्यों का स्वागत करता है, पर काम में हरज नहीं होने देता । हाथ बदस्तूर चलते रहते हैं जैसे वह उसके शरीर का भाग नहीं मशीन का पुर्जा हों ।

कारखाने में कई साप्ताहिक और मासिक पत्रों की जुजबन्दी भी होती थी । उनके दफ्तरों के बाबू आते थे । वे चीन, बर्मा, वीयत-नाम और मलाया आदि देशों के जन-संघर्षों का जिक्र छेड़ देते थे । बल्लन यह सब बातें बड़े ध्यान से सुनता और अपने अन्दर एक कोमल भावना उत्पन्न होती हुई महसूस करता । यह भावना साकार थी जैसे वर्षा की बूंदें पाकर धरती के भीतर छिपे हुए बीज में दो सुर्ख-सुर्ख कोंपलें फूट आई हों । सुनते-सुनते उसे मालूम हो गया कि ये लड़ाइयाँ जन-साधारण— मेहनतकश तबके की मुक्ति के लिए लड़ी जा रही हैं ।

उनका जो सबसे छोटा मालिक था, वह भी इन बातों में खास

दिलचस्पी रखता था। शायद इसी से उसके स्वभाव में बड़े मालिक की सी कठोरता और रूखापन नहीं था। वह मजदूरों से हँस कर मिलता, मज़ाक करता और कभी-कभी उन्हें इन लड़ाइयों का हाल सुनाया करता। सभी मजदूर यह सुन कर खुश होते कि हरेक देश की मेहनतकश जनता साम्राज्यवादियों और सरमायदारों के विरुद्ध लड़ रही है और जीत रही है। उनकी जीत को वे जाने क्यों अपनी जीत समझते थे। और छोटा मालिक जो उन्हें यह समाचार सुनाया करता था उसे वे आदर और श्रद्धा से देखते थे।

जैसे-जैसे संघर्ष अधिक देशों में फैल रहा था, मजदूरों का जोश और उल्लास बढ़ रहा था। वे अपने असहनीय उमस भरे वातावरण में कुछ परिवर्तन महसूस करते थे। अब फोरमैन रशीद से भी मज़ाक होने लगा था और बड़े लाला की मौजूदगी में हँसना ऐब नहीं समझा जाता था। उन्हें फर्मे मोड़ने की सैकड़े के हिसाब से मज़दूरी मिलती थी। अगर सौ से पन्द्रह-बीस फर्मे अधिक हुए तो उन्हें हिसाब में गिना नहीं जाता था और कई बार पच्चीस-तीस तक छोड़ दिए जाते थे। लेकिन अब आवाज़ उठने लगी थी कि एक-एक फर्मा गिना जाए और पाई-पाई का हिसाब हो। ऐसे बीसों रुपए मुफ्त में मारे जाते थे। मगर जो मजदूर मुखिया और चतुर थे उनके साथ यह ज्यादती कम होती थी। इसके अलावा कुछ लोगों को अक्सर पेशगी रकम लेनी पड़ती थी जिसके कारण मालिक को खुश रखने के लिए उन्हें खुशामद करनी पड़ती थी। इसलिए हिसाब में गड़बड़ का सिलसिला बदस्तूर चल रहा था।

इस कारखाने में जितना काम बढ़ता जा रहा था उतना ही आस-पास के दूसरे बुकबाईंडिंग हाउसों का काम सिकुड़ता जा रहा था। वहाँ मजदूरों की मजूरी कम होती जाती और एक दिन बिल्कुल बेकार हो जाने का खटका उन्हें हर वक्त लगा रहता था। इसलिए अक्सर उनमें

काम करने वाले मजदूर आजाद बुकबाईडिंग हाउस में आना चाहते थे।

मालिक भी समय-सोधी होते हैं। वे इनकी इस परिस्थिति से लाभ उठाना चाहते हैं। जब दूसरे बुकबाईडिंग का कोई आदमी काम करने आता तो बड़े लाला अपनी लाभ-प्रिय बुद्धि से उत्तर देता—'मजूर के जिस पद पर आप आना चाहते हैं, उस पर काम करने के लिए हमारे पास पहले से ही बहुत आदमी हैं। और इतना काम होता नहीं कि जो आए उसी को रख लिया जाए।'

'आप हमें कुछ कम मजूरी दे दीजिए।'

'कम !' लाला ऐसे दुहराते जैसे बात उनकी समझ में न आई हो और तनिक रुक कर कहते—'अच्छा, हम सोचेंगे।'

चार-पाच दिन बाद वे पच्चीस नए मजदूर रख लिए जिनकी मजूरी पहले के मजदूरों से कम थी। जब वहाँ के मजदूरों ने यह बात सुनी तो वे बहुत सिटपिटाए। हालाँकि उनकी अपनी मजूरी घटाने की कोई बात नहीं उठी थी, लेकिन वे जानते थे कि जब नए आदमी कम मजूरी पर रखे जा रहे हैं तो उनकी मजूरी आज नहीं कल अवश्य कम हो जाएगी। मान लिया जाए कि मजूरी घटने का सवाल नहीं उठे तो भी अधिक काम नए मजदूरों को दिया जाएगा क्योंकि उनको मजूरी कम मिलेगी और मालिक को अधिक लाभ होगा। आखिर उन्हें अपनी मजूरी कम कर देने के लिए खुद कहना पड़ेगा इसलिए सलाह-मशविरे और मीटिंग होने लगीं। पहले दो प्रतिनिधि चुन कर भेजे गए जिन्होंने कम मजूरी पर नए आदमी भरती करने की नीति बन्द करने की माँग की।

मालिक हँसा। इस हँसी का मतलब उनकी शंकाओं को अकारण सिद्ध करना था। फिर अत्यन्त गम्भीर और शांत भाव से बोला—'कोई कम मजदूरी पर काम करना चाहता है तो तुम्हें इससे क्या। तुम अपना काम करो और पूरी मजूरी लो।'

वह इसके अलावा कोई बात सुनने को तैयार न हुआ । मजदूरों ने हड़ताल का फैसला कर लिया ।

दूसरे दिन सुबह हड़ताल शुरू हो गई । फोरमैन रशीद ने मजदूरों को बहुतेरा समझाया कि चलो अब काम करो । मैं पाँच बजे तक फैसला करा दूँगा । लेकिन मजदूरों ने उसकी बात सुनने से इन्कार कर दिया और उसे मालिकों का दलाल बताया । किसी ने दरियाफ्त किया कि छोटे बाबू रतन किधर हैं । जवाब मिला—'हमारे साथ हों तो अच्छा है । वरना हमें भूलना नहीं चाहिए कि वे भी मालिकों के भाई हैं ।'

बारह बजे तक इधर काना-फूसी होती रही । रशीद के बाद मास्टर जी को भेजा गया क्योंकि मजदूर उनका लिहाज करते हैं इसलिए वे उन्हें पुचकार कर काम पर लाएँ । फिर मजदूरों में फूट डालने की कोशिश की गई और उसके लिए यह शस्त्र कारगर समझा गया कि जिन मजदूरों को रकम पेशगी दी गई है उनसे वापस माँगी जाए । उनके पास देने को रुपए नहीं होंगे इसलिए मजबूरन काम पर चले आवेंगे ।

मजदूर सामने बाग में बैठे बातें कर रहे थे; मास्टर जी ने जा कर कहा—'अच्छा अगर तुम काम करना नहीं चाहते तो अपना-अपना हिसाब समझ लो । अपने पैसे ले लो और हमारे दे दो । फिर जहाँ जी चाहे जाओ ।'

हिसाब शुरू हुआ । पहले उन मजदूरों के नाम पुकारे गए जिन्होंने पेशगी ली थी । उनसे वे पैसे माँगे गए । मास्टर जी के आने से पहले मजदूर बाग में बैठे इस मामला पर विचार कर रहे थे कि अगर पेशगी के रुपए वापस माँगे गए तो वे क्या कहेंगे ? और उन्हों ने उसका तोड़ सोच लिया था । जिस किसी के पास जितने पैसे थे उसने निकाल दिए । इस तरह पेशगी का पैसा-पैसा चुका देने के बाद भी उनके पास कुछ रुपए बच रहे । इसके बाद जितनी मजदूरी के रुपए निकलते थे उन्होंने

वे लिए और सब मुस्कराते हुए चल पड़े। और दूसरी जगह काम करने की बात चला दी।

कारोबारी लोगों को एक-दूसरे से ईर्षा होती है। 'जय हिन्द बुक बाईंडिंग हाउस' का मालिक आजाद बुक बाईंडिंग हाउस की तरक्की पर हमेशा दाँत पीसता था। अब उनके मजदूरों को बिगड़ते देख कर बहुत खुश हुआ। जब हड़ताली मजदूर उसके पास आए तो बोला—'यह तमाम कारोबार तुम सम्भालो। जो लाभ हो आपस में बाँट लो। बीच में से मुझे भी मेरी मजूरी देते जाओ ताकि मैं भी रोटी खा सकूँ।

मामला अभी तय नहीं हो पाया था कि मास्टर जी फिर आए और उनके प्रतिनिधियों को बुला ले गए। नए आदमी रखे जाने के सम्बन्ध में उनकी माँग यह थी कि अव्वल तो इतने आदमी रखना अनुचित है। दूसरे जो आदमी रखे जाएँ उनसे उसी मजूरी पर काम लिया जाए जिस पर पहले कर रहे थे। इसके अलावा एक शर्त यह भी थी कि वे जो काम करते हैं उसके एक-एक फर्मे का हिसाब उन्हें दिया जाए। सौ से अधिक फर्मे को बिना गिने छोड़ देना उनकी मेहनत को मुफ्त मार लेना है।

ये माँगे स्वीकार हुईं और मजदूर काम पर लौट आए।

बल्लन इस सफलता पर प्रसन्न हो रहा था और कागज पर लेई लगाते हुए मुस्करा रहा था। उसे अपने वे शब्द याद आ रहे थे जो हड़ताल के वक्त उसने रशीद से कहे थे।

सुबह जब हड़ताल का ऐलान हुआ था और वह काम छोड़ कर बाहर निकले थे तो करीब ही जो फल वाला बैठता है बल्लन उससे दो आने के अंगूर खरीद लाया था। रशीद अब भी बैठा काम कर रहा था। बल्लन अंगूरों का दोना हाथ में लिए दुकान के सामने जा खड़ा हुआ। वह रशीद की ओर देख रहा था और अंगूर खा रहा था। उसकी भाव-भंगी से लगता था कि जैसे वह रशीद से कह रहा हो—बड़ी शान से हुक्म देते थे जनाब, चल काम कर, खड़ा क्या देखता है।

लो मैं खड़ा हूँ अब हटाओ कैसे हटाते हो खड़ा होने से ।

रशीद भी शायद उसका यह मतलब समझ गया था । डाँट तो नहीं सकता था, अलबत्ता मुस्कराते हुए बोल उठा था—'हड़ताल करते हो मालूम है इसका नतीजा क्या निकलेगा ? जेल में डाल दिए जाओगे ।'

'बहुत देखे हैं तुम्हारे नतीजे' बल्लन ने तुनक कर कहा—'चलो डाल दो न अभी । कौन डरता है जेल से ।'

और उसकी छाती तन गई थी । जिन्दगी में शायद पहली मर्तबा उसे अपने अस्तित्व पर इस कदर गर्व महसूस हुआ था ।

सफलता ने उसके इस गर्व को कई गुना बढ़ा दिया था । जब कागज पर लेई लगा रहा था तो वह अपने अस्तित्व को फैलता और बुलन्द होता हुआ महसूस कर रहा था और उसकी भावना मुस्कराहट से स्पष्ट हो रही थी कि दुनिया भर के मजदूर एक हो जाएँ तो शोषण और साम्राज्य का अन्त जरूर हो जाए ।